शैक्षणिक

संदर्भ

वर्ष: 13 अंक 79 (मूल क्रमांक 136)
सितम्बर-अक्टूबर 2021 मूल्य: 50.00

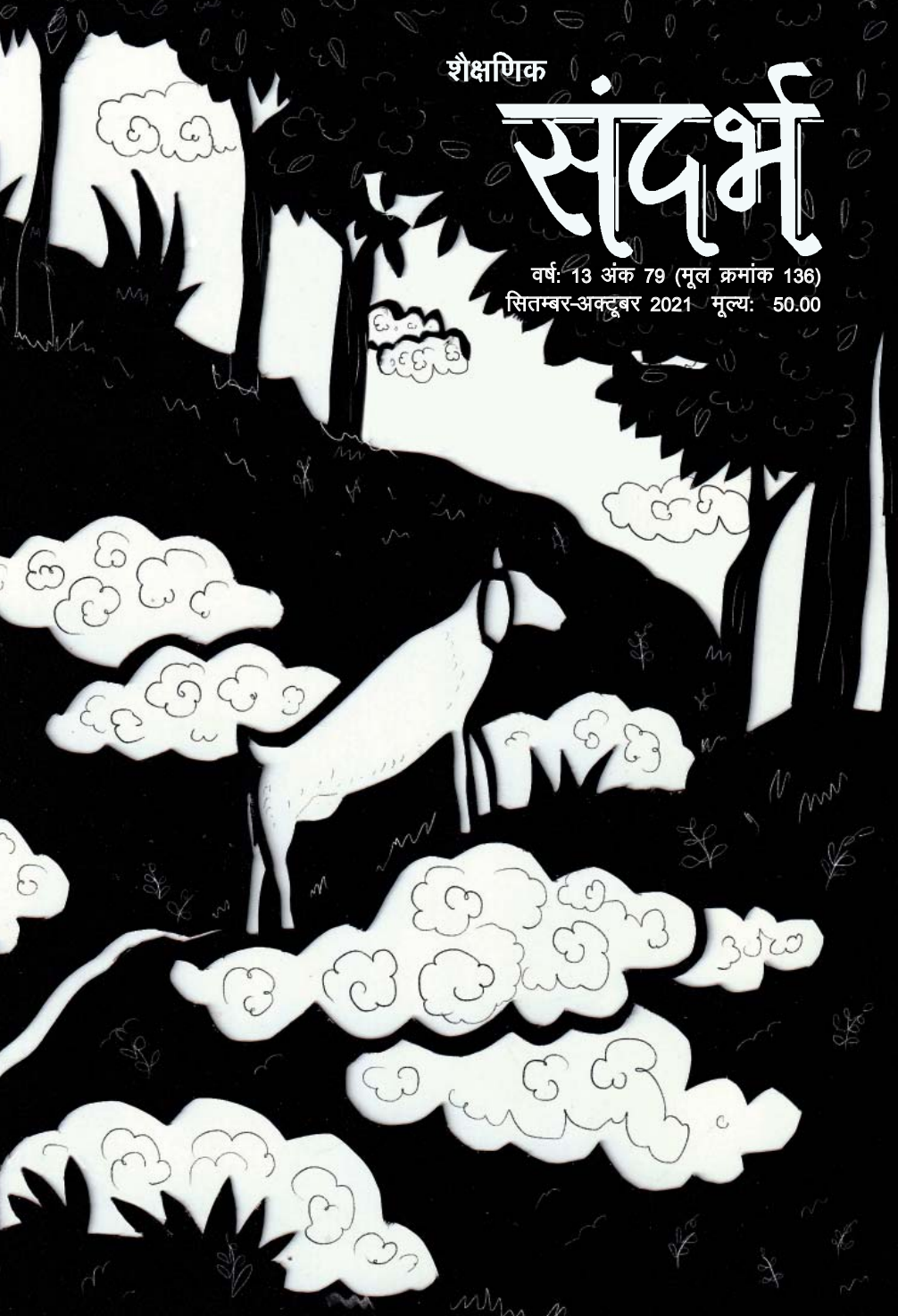

सम्पादन
राजेश खिंदरी
माधव केलकर

प्रबन्धकीय सह-सम्पादक
पारुल सोनी

सहायक सम्पादक
कोकिल चौधरी
अतुल वाधवानी

सम्पादकीय सहयोग
सुशील जोशी
उमा सुधीर

आवरण
राकेश खत्री

वितरण
झनक राम साहू

सहयोग
कमलेश यादव, अनमोल

शैक्षणिक
संदर्भ

वर्ष: 13 अंक 79 (मूल क्रमांक 136)
सितम्बर-अक्टूबर 2021

मूल्य: ₹ 50.00

एकलव्य फाउण्डेशन
जमनालाल बजाज परिसर
जाटखेड़ी, भोपाल-462 026 (म.प्र.)
फोन: +91 755 297 7770, 71, 72
www.sandarbh.eklavya.in
सम्पादन: sandarbh@eklavya.in
वितरण: circulation@eklavya.in

अब *संदर्भ* आप तक पहुँचेगी रजिस्टर्ड पोस्ट से इसलिए सदस्यता शुल्क में वृद्धि की जा रही है।

सदस्यता शुल्क	एक साल (6 अंक)	तीन साल (18 अंक)	आजीवन
	450.00	1200.00	8000.00

मुखपृष्ठ व पिछला आवरण: *अब्बू खाँ की बकरी।* अल्मोड़ा की पहाड़ियों के निवासी अब्बू खाँ को बकरियाँ पालने का बहुत शौक था। लेकिन बकरियाँ बाड़े में बँधकर नहीं, खुले आसमान तले जीना चाहती थीं। वे पहाड़ी के हरे-भरे मैदान में कुलाँचे भरने के सपने देखतीं। पहाड़ी पर घूमता भेड़िया अक्सर उन्हें अपना शिकार बना लेता और अब्बू खाँ उदास हो जाते। फिर अब्बू खाँ की चहेती बकरी 'चाँदनी' का क्या हुआ, पढ़ते हैं इस कहानी में पृष्ठ 77 पर। *चित्र: तविशा सिंह।*

कवर 3 - सूर्य ग्रहण के दौरान प्राकृतिक पिनहोल्स (पत्तियों के बीच की खाली जगहों) द्वारा बनाई गई सूर्य की खूब सारी छवियाँ। प्रकाश के दो बुनियादी विषय प्रासंगिक होते हैं - छाया तथा प्रतिबिम्ब। छाया क्या है, क्या छायाएँ पूरी तरह से अँधेरी होती हैं और क्या छाया के रूप और आकार बदलते रहते हैं? प्रकाश किरणों जैसी सरल किन्तु व्यापक अवधारणाएँ, हमारे आसपास की बहुत-सी चीज़ों को समझने में हमें कैसे समर्थ बनाती हैं? इन सभी सवालों के जवाब समझते हैं सम्बन्धित लेख में पृष्ठ 13 पर।

यह अंक त्रिवेणी एजुकेशनल ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है।

LINK : Cover 3 - https://www2.palomar.edu/users/warmstrong/images2/eclipse1b.jpg

शीघ्र प्रकाश्य

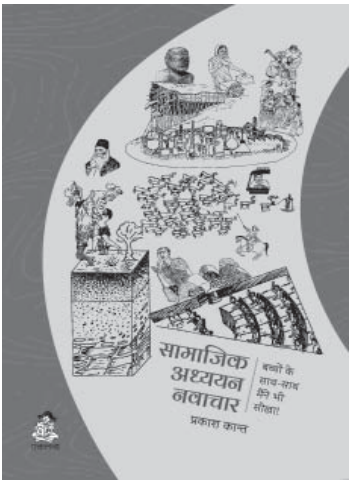

सामाजिक अध्ययन नवाचार: बच्चों के साथ-साथ मैंने भी सीखा!

लेखकः प्रकाश कान्त
ISBN: 978-93-91132-92-7
पेपरबैक, पेज - 192
मूल्य: 90/-

ऑर्डर करने के लिए सम्पर्क करें
+91 755 297 7770-71-72
books@eklavya.in
www.eklavya.in | www.pitarakart.in

शिकार युग से अब तक की मनुष्य की यात्रा संघर्षों और विविधता से भरपूर लेकिन भरोसा जगाने वाली रही है। उसकी अब तक की लगातार कोशिश एक बेहतर-से-बेहतर दुनिया बनाने की रही है। पुस्तक के पाठों में इन बातों की अनुगूंज मौजूद रही है...

— प्रकाश कान्त
इसी किताब से

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम की तर्ज़ पर एकलव्य ने अस्सी के दशक में सामाजिक अध्ययन नवाचार कार्यक्रम की शुरुआत की। इसके पीछे बुनियादी नज़रिया यह था कि सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में सामाजिक अध्ययन महज़ स्कूली 'विषय' की बजाय हमारे आसपास के समाज की विश्लेषणात्मक समझ बनाने का जीवन्त माध्यम बन सके। नवाचारी किताबों के साथ मध्य प्रदेश के कुछ स्कूलों में प्रयोग शुरू हुआ। इस प्रक्रिया में कई चुनौतियाँ आईं और अवसर भी। इन्हीं चुनौतियों व अवसरों की बानगी एक शिक्षक के शब्दों में।

प्रकाश का अवलोकन

स्कूल के विज्ञान पाठ्यक्रम में प्रकाश का विषय प्रारम्भिक कक्षाओं में ही आ जाता है। और इसके दो बुनियादी विषय प्रसंग होते हैं - छाया तथा प्रतिबिम्ब। छाया क्या है, क्या छायाएँ पूरी तरह से अँधेरी होती हैं और क्या छाया के रूप और आकार बदलते रहते हैं? इस लेख में लेखक ने ऐसे कई सरल तरीकों का ज़िक्र किया है जिनके द्वारा छायाओं और प्रतिबिम्बों का उपयोग करते हुए, प्रकाश के शिक्षण में दैनिक जीवन के अवलोकनों को अवधारणाओं से जोड़ा जा सकता है। किस तरह प्रकाश किरणों जैसी सरल किन्तु व्यापक अवधारणाएँ, हमारे आसपास की बहुत-सी चीज़ों को समझने में हमें समर्थ बनाती हैं? आइए, इस लेख से ऐसे सवालों के जवाबों को समझें।

13

मूँ तो चल्याँ टीको लगवावाँ, तूँ भी चाल

टीकाकरण हानिकारक बीमारियों से रक्षा करने का एक सुरक्षित और प्रभावी तरीका है। यह विशिष्ट संक्रमणों के विरुद्ध प्रतिरोध बनाने की आपके शरीर की प्राकृतिक सुरक्षा प्रणाली का उपयोग करता है और उसे मज़बूत बनाता है। लेकिन हमारे समाज के कुछ हिस्सों को यह तथ्य समझाना एक चुनौतीपूर्ण कार्य रहा है। लेखक के अनुभव के अनुसार, राजसमन्द ज़िले के तकरीबन 20 से अधिक पंचायतों के गाँव और ढाणियों में टीकाकरण जागरूकता अभियान के दौरान, कोई भी उन लोगों के पास आने या बात करने को तैयार नहीं था। कुछ-एक लोग जो शिक्षित थे, उनमें भी वैज्ञानिक चेतना का अभाव था। आइए, उक्त लेख के माध्यम से पढ़ते हैं कि कुछ लोगों की टीकाकरण की सामूहिक कोशिश कैसे कामयाब हुई और उन्होंने किस तरह की तकलीफों का सामना किया।

51

शैक्षणिक संदर्भ

अंक-79 (मूल अंक-136), सितम्बर-अक्टूबर 2021

इस अंक में

07 | बूँद का कमाल
कालू राम शर्मा

13 | प्रकाश का अवलोकन
राजाराम नित्यानन्द

23 | और फिर उन्होंने एक गहरी साँस ली!
मृणाल शाह

27 | पहेलियों के माध्यम से गणित सीखें
रोस्सी और शिखा

36 | कहानी के आगे
मौअज़्ज़म अली

43 | मैं महापल्ली में रहता हूँ...
मीनू पालीवाल

51 | मूँ तो चल्याँ टीको लगवावाँ, तूँ भी चाल
मोहम्मद उमर

65 | हिन्दी हाज़िर है!
टी. विजयेंद्र

77 | अब्बू खाँ की बकरी
ज़ाकिर हुसैन

86 | पृथ्वी का छोर कहाँ है?
सवालीराम

आपने लिखा

बीते कुछ हफ्तों से मैं, कुछ वक्त तलाशकर, *संदर्भ* का मार्च-अप्रैल, 2021 अंक पढ़ रहा हूँ। मैं खास तौर से रुत्खेर ब्रेख्मान की लिखी पुस्तक *ह्यूमनकाइंड* के अंश *होमो लूडेन्स - खिलन्दड़ मानव* से प्रभावित हुआ।

आज बच्चों के जीवन में खेल का किरदार ज़रूर ही बदला है, और वह भी बेहतरी के लिए नहीं। मुझे याद है, कैसे पचास के दशक के बीच, इंग्लैंड के प्राइमरी स्कूलों के खेल के मैदानों में, कुछ खास खेल साल के किसी खास समय में ही खेले जाते थे। लड़कियाँ फाइव स्टोन्स (दानी) और हॉपस्कॉच (अड्डू/लंगड़ी) खेला करती थीं, वहीं लड़के मार्बल्स (कंचे या अंटी) और एक अँग्रेज़ लड़कों के लहज़े वाला खेल, कॉनकर्स, खेला करते थे। यह खेल पतझड़ में हॉर्स चेस्टनट के फल से खेला जाता था।

1969 में, जब पहली बार मैं अपने देश से बाहर यात्रा कर भारत आया, तो मैंने पाया कि मैं जहाँ भी गया वहाँ फाइव स्टोन्स और हॉपस्कॉच खेला जाता था – बच्चों की एक ऐसी संस्कृति जिसने सभी सीमाओं को लांघा। जिस तरह पचास के दशक में ब्रिटेन में, बसन्त के किन्हीं दिनों में, लड़कियाँ फाइव स्टोन्स खेला करती थीं, उसी तरह लक्ष्मी आश्रम में हमारी लड़कियाँ भी बसन्त में दानी और किसी अन्य मौसम में अड्डू खेलती थीं। गूगल पर ढूँढ़ने पर पता चलता है कि फाइव स्टोन्स, जिसे नकलबोंस भी कहा जाता है, एक ऐसा खेल है जो आदि काल से दुनियाभर में, अलग-अलग रूपों में, खेला जा रहा है।

इस लेख को पढ़ते हुए, मैं पेज 66 पर लिखे लेखक के वाक्य – "बच्चे कबाड़खानों और निर्माण-स्थलों पर खेलना ज़्यादा पसन्द करते हैं", से खुद को जोड़ पा रहा था। मुझे याद आता है कि कैसे सात या आठ साल की उम्र में, मैं अपने दोस्तों के साथ घर के नज़दीक निर्माणाधीन मकानों में खेला करता था। कभी-कभी तो ऐसी जगहें खेलने के लिए सचमुच खतरनाक होती थीं! बचपन का एक और आनन्द पेड़ों पर चढ़ना था – हर एक पेड़ एक चुनौती हुआ करता था! रिचमल क्रॉम्पटन की कहानियों का किरदार, विलियम मेरे बचपन का साहित्यिक रोल मॉडल था। मुझे दुख है कि इन दिनों बच्चे उन बेढंगे खेलों के मज़े से वंचित रह जाते हैं जिसे मैंने अपने बचपन में भरपूर लूटा।

डेविड हॉप्किंस
अलमोड़ा, उत्तराखण्ड

संदर्भ 128 (मई-जून 2020) में *प्रकाश की गति नापना - कुछ कोशिश धरती पर* लेख में 'फूको का तरीका' वाले हिस्से में पृष्ठ-41, स्तम्भ-2 में पहले पैराग्राफ में लिखे गए वाक्य में शायद भूलवश लेंस लिख दिया गया है। उस वाक्य को इस तरह पढ़ा जाना चाहिए -

थीटा का मान ज्ञात करने के लिए फूको ने घूमने वाले समतल दर्पण से स्थिर अवतल दर्पण और प्रकाश स्रोत की दूरी को भी ध्यान में रखा, जो उसने अपने प्रयोग में 5 मीटर रखी थी।

विक्रम चौरे
अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, सागर, म.प्र.

संदर्भ के लेखों को पढ़ने में सच में एक आनन्द है – बच्चों के सीखने की क्रिया को समझने में मेरी मदद करने के अलावा, ये लेख बहुत प्रेरक भी हैं। स्कूली शिक्षा में कार्य करने वाले लोगों द्वारा कुछ लिखा पढ़ पाना अमूमन मिलता नहीं। यह पत्रिका उसका एक बढ़िया स्रोत है। शुरुआत में, मुझे हिन्दी पढ़ने में कुछ मुश्किल हुई पर अब मुझे आदत हो चुकी है।

मैं सचमुच चाहती हूँ कि *संदर्भ* अँग्रेज़ी में भी प्रकाशित हो, ताकि यह और भी अधिक लोगों द्वारा पढ़ी जा सके। बड़े-बड़े अँग्रेज़ी माध्यम के स्कूलों में पढ़ा रहे शिक्षक भी, ज़मीनी स्तर पर सबसे बुनियादी अवधारणाओं और विचारों पर काम कर रहे शिक्षकों के अनुभवों से बहुत कुछ सीख सकते हैं। वैसे भी, बच्चे और उनके सीखने के तरीके, उनकी अलग-अलग पृष्ठभूमियों के बावजूद, किसी हद तक समान ही होते हैं।

सरयू गर्ग
चण्डीगढ़

अनदेखे हमसफर: हम और हमारी ज़िन्दगी में सूक्ष्मजीव

मानव शरीर में रहने वाले सूक्ष्मजीवियों के बारे में ग्राफिक फॉर्मेट में यह एक किताब है।

यह सूक्ष्मजीवियों और मनुष्यों के बीच के रिश्ते की एक मज़ेदार कहानी है जिसकी गुत्थियों को शोधकर्ताओं ने हाल ही में सुलझाना शुरू किया है।

यह किताब बच्चों, वयस्कों और उन सभी के लिए है जो अपने भीतर मौजूद अलग-अलग तरह के सूक्ष्मजीवियों के बारे में जानने की जिज्ञासा रखते हैं। किताब हिन्दी के साथ-साथ अँग्रेज़ी में A Germ of an Idea: Microbes, Us and the Microbes within Us नाम से भी उपलब्ध है।

अनदेखे हमसफर: हम और हमारी ज़िन्दगी में सूक्ष्मजीव

लेखक – चारुदत्त नवरे
चित्र – रेश्मा बर्वे
अनुवाद – कोकिल चौधरी
ISBN – 978-93-91132-82-8
ए-4 पेपरबैक; पेज – 48
मूल्य – 75/-

A Germ of an Idea: Microbes, Us and the Microbes within Us

Author – Charudatta Navare
Illustrator – Reshma Barve
ISBN – 978-81-946518-8-8
A-4 Paperback; Pages – 48
Price – 95/-

ऑर्डर करने के लिए सम्पर्क करें – +91 755 297 7770-71-72
books@eklavya.in www.eklavya.in www.pitarakart.com

चित्र: कैरन हैडॉक

बूँद का कमाल

कालू राम शर्मा

विज्ञान का पीरियड लग चुका था। मास्साब कक्षा में घुसे तो देखा कि बच्चे फ्यूज़ बल्ब में पानी भरकर अवलोकन कर रहे हैं।

कुर्सी पर बैठकर, अपनी दोनों कुहनियों को टेबल पर टिकाते हुए, मास्साब बोले, "अच्छा तो आज एक और प्रयोग करेंगे।" मास्साब एक-एक काँच की पट्टी को खिड़की में से आ रही रोशनी के विरुद्ध उठाकर, और उनमें से झाँक-झाँककर, अपने रूमाल से साफ कर रहे थे।

बच्चे इस कार्यप्रणाली को बहुत बारीकी-से देख रहे थे। सभी काँच की पट्टियों को साफ कर चुकने के बाद, मास्साब बोले, "देखो...। टोली से कोई एक आकर काँच की पट्टी ले जाए।"

बस यह कहने की देरी थी कि पूरी कक्षा मास्साब की ओर टूट पड़ी। उन्होंने नाराज़गी भरे अन्दाज़ में टेबल पर हाथ ठोंका और गरजे, "ऐसे काम नहीं चलेगा। तुम सबको मैं कह चुका हूँ फिर भी शान्ति से कोई काम नहीं कर सकते।"

बच्चे सहमकर वापस अपनी-अपनी जगह पर चले गए। नारंगी बुदबुदायी, "पहले तो बुलाएँगे; फिर डाँट!"

मास्साब ने सहज होकर कहा, "अच्छा चलो...। टोली से एक-एक करके आओ।"

मास्साब की डाँट का असर कुछ ऐसा हुआ था कि बच्चे अब भी अपनी जगह पर ही सहमकर बैठे थे। मास्साब उनकी ओर देख सोच में पड़ गए। अबकी बारी मास्साब ने एक-एक को उँगली के इशारे से बुलाया और काँच की पट्टी थमाते गए। इस दौरान मास्साब सोच रहे थे कि उन्होंने बच्चों को बेफालतू ही घुड़की पिला दी। प्रशिक्षण में वे भी तो बच्चों जैसी ही हरकत कर डालते थे।

मास्साब ने कक्षा में एक नज़र दौड़ाई। बच्चे काँच की पट्टी को उलट-पलटकर देख रहे थे।

चित्र-1: *पेट्रोमैक्स (बाएँ) नाम का एक केरोसीन लैंप, जिसमें स्क्रीन के तौर पर काँच की पट्टियाँ (दाएँ) लगी होती हैं।*

सामग्री की जुगाड़

"अरे, अरे, रे... सुन तो...।" भागचन्द्र अपनी टोली वालों को कुछ बताना चाह रहा था मगर उसकी बात सुनने को कोई तैयार नहीं था।

मास्साब का ध्यान गया कि भागचन्द्र कुछ कहना चाह रहा है। उन्होंने उसे बोलने के लिए आँखों से इशारा किया। "ये तो ग्यास की पट्टी है।"

"हाँ, बिलकुल ठीक पकड़ा भई तुमने तो। ...हाँ, ये पेट्रोमेक्स की पट्टियाँ हैं।" खँखारते हुए मास्साब बोले, "जब कोई चीज़ अपन को न मिले तो उसकी जुगाड़ तो भिड़ाना ही पड़ती है। तो मैंने पेट्रोमेक्स मतलब ग्यास में से काँच की पट्टियाँ निकाल लीं बस...।"

बच्चों को यह आइडिया बढ़िया लगा, "गज़ब...।"

पेट्रोमेक्स की पट्टियाँ किट में दी गई स्लाइड के अपेक्षाकृत थोड़ी लम्बी और सँकरी होती हैं। दरअसल, किट में काँच की स्लाइड्स कम थीं। इस वजह से स्लाइड्स के विकल्प के रूप में मास्साब ने पेट्रोमेक्स में लगी हुई काँच की पट्टियों को निकाल लिया था। सामग्री का जुगाड़ करने का गुर मास्साब सीख जो चुके थे। उस इलाके में पेट्रोमेक्स को 'ग्यास' के नाम से जानते हैं। इसलिए बच्चे भी उसे ग्यास की पट्टी के नाम से ही जानते थे।

टोली में बैठे बच्चे, मास्साब के निर्देश का इन्तज़ार कर रहे थे। मास्साब कक्षा में टहलते हुए बोले,

"ऐसा करो कि इस काँच की पट्टी पर पानी की बूँद टपकाओ। ध्यान रखना... बूँद गोल बननी चाहिए।"

अधिकांश बच्चों को मास्साब की यह मामूली-सी बात समझ में नहीं आई। इसलिए वे अन्य टोलियों की ओर ताक-झाँक कर रहे थे।

मास्साब ने पानी के लोटे में उँगली डालकर निकाली और उँगली से एक बूँद काँच की पट्टी पर टपकाई। बूँद गोल बनने की बजाय काँच की पट्टी पर फैल गई। उन्होंने काँच की पट्टी को अपनी बुशर्ट से पोंछा और फिर कक्षा में सबसे आगे बैठी टोली के एक बच्चे को अपने पास बुलाया। मास्साब ने बच्चे के सिर को पकड़ा और तेल लगे बालों पर काँच की पट्टी को हल्के-से रगड़ दिया। जब मास्साब ऐसा कर रहे थे तो पहले तो बच्चा घबराया, मगर बच्चे की घबराहट फुर्र हो गई जब मास्साब अपने गंजे सिर पर हाथ घुमाते हुए बोले, "अगर मेरे सिर पर बाल होते, तो बेटा, तुम्हारी मदद नहीं लेता।"

कक्षा में एक बार फिर से हँसी का माहौल बन चुका था। दरअसल, मास्साब ने सिर पर काँच की पट्टी को हल्के-से रगड़कर तेल की एक परत चढ़ा दी थी ताकि पानी फैले नहीं और बूँद बढ़िया बन जाए। उन्होंने यह बात सभी बच्चों से भी कही।

कौन जानता है ड्रॉपर को?

मास्साब को कुछ याद आया और उन्होंने विष्णु को यह कहकर भेजा कि वो विज्ञान के सामान की अलमारी में से ड्रॉपर ले आए।

विष्णु गया ज़रूर, मगर खाली हाथ लौटा। तब मास्साब बोले, "लाओ...।"

विष्णु सहमकर बोला, "मास्साब नहीं मिले।"

"क्या नहीं मिले?"

"वो जो आपने कहा था।"

"क्या कहा था?"

"वो नहीं मिले।" विष्णु अपना सिर खुजाते हुए बोला, "मास्साब... डरापर।"

"तो तुम पहचानते हो?" मास्साब ने विष्णु से पूछा।

मास्साब बोले, "कौन जानता है ड्रॉपर को?"

सभी बच्चे चुप थे। मास्साब समझ चुके थे कि बच्चों ने ड्रॉपर नाम पहली बार ही सुना था। यही वजह थी कि विष्णु मास्साब के कहने पर गया तो सही, मगर खाली हाथ लौट आया क्योंकि वह उस चीज़ को पहचानता ही नहीं था। विष्णु यह पूछने का साहस नहीं जुटा पाया कि आखिर ड्रॉपर की पहचान क्या है। न ही वह मास्साब को मना कर सकता था। वह तो कक्षा से जाते हुए ही यह रणनीति बना चुका था कि लौटकर कह देगा – "नहीं मिले।"

कक्षा से मास्साब किट वाले कमरे में गए और वहाँ अलमारी में बिखरे हुए सामान में ड्रॉपर टटोलने लगे। उन्होंने देखा कि ड्रॉपर्स बिना धुले ही पड़े हैं। कुछ को तो चूहों ने कुतर डाला है। मास्साब ने कुछ बच्चों को कक्षा में से बुलाया और उनको ड्रॉपर्स देते हुए कहा, "ये लो ड्रॉपर्स... इनको धो डालो...।"

विष्णु, केशव, नारंगी और भागचन्द्र ड्रॉपरों को धोने लगे। नारंगी बोली, "ऐसे तो दवा की शीशी में होते हैं।"

मास्साब धुले हुए ड्रॉपर्स का अवलोकन कर रहे थे और चूहों द्वारा कुतरे गए ड्रॉपर्स की एक अलग ढेरी बना रहे थे। बच्चे मास्साब के क्रियाकलाप को ध्यानपूर्वक देख रहे थे। टेबल पर दो ढेरियाँ बन चुकी थीं। चूहों द्वारा कुतरे गए ड्रॉपर्स वाली ढेरी बड़ी थी।

मास्साब मन-ही-मन सोच रहे थे, "क्या करें चूहों का...? कुछ समझ में नहीं आता। सामान बरबाद हो रहा है...। कोई सुनने वाला ही नहीं...।"

मास्साब ने छोटी ढेरी में से प्रत्येक टोली को एक-एक ड्रॉपर बाँट दिया।

मज़ा आने का मज़ा

बच्चों की इन्तज़ार की घड़ियाँ खत्म हुईं और मास्साब ने ड्रॉपर में पानी भरने का प्रदर्शन करते हुए निर्देश दिया, "देखो...। ड्रॉपर में पानी भरकर इससे काँच की पट्टी पर धी..रे..से बूँद टपकाना है।"

बच्चे मास्साब का अनुसरण करते हुए पानी की बूँद काँच की पट्टी पर टपका रहे थे। कुछ टोलियों में जब बच्चे बूँद टपकाते तो दो-तीन बूँद एक साथ टपक जातीं। एक टोली ने ड्रॉपर को इतनी ज़ोर-से दबाया कि बूँद बन ही नहीं पाई और ड्रॉपर से निकली पानी की पिचकारी ने दूसरे बच्चे को गीला कर दिया।

मास्साब यह सब देख रहे थे और सोच रहे थे कि कुछ करने के दौरान गलतियाँ तो होंगी ही। उन्होंने कहा, "काँच की पट्टी पर बूँद जितनी गोल बनेगी, उतना ही मज़ा आएगा।"

जब बच्चों ने मास्साब के मुँह से 'मज़ा' शब्द सुना तो उनको मज़ा आने लगा कि कुछ खास होने वाला है।

बूँद की नज़र से

भले ही बच्चे अभी भी ड्रॉपर का नाम न पुकार पा रहे थे, मगर ड्रॉपर की कार्यप्रणाली को समझ चुके थे। काँच की पट्टी पर बूँद बनाने का काम जारी था मगर मास्साब ने यह नहीं बताया था कि आखिर बूँद बनाई क्यों जा रही है। बच्चों को तो बूँद बनाने को कहा गया था इसलिए वे बूँद बना-बनाकर देख रहे थे।

मास्साब को खयाल आया कि उन्होंने बच्चों को आगे का निर्देश तो दिया ही नहीं। सो वे बोले, "अच्छा...। अब ऐसा करो कि पट्टी पर जो बूँद

बनी है, उसमें से किसी बारीक चीज़ को देखना है।"

मास्साब ने कक्षा में चुप्पी देख भाँपा कि बात शायद बच्चों के सिर के ऊपर से निकल गई। अब की बार मास्साब एक टोली के पास गए और बच्चे से बूँद बनी पट्टी ली और बूँद में से देखने का तरीका बताया। मास्साब ने यह भी बताया कि किसी चीज़ को साफ देखने के लिए काँच की पट्टी को ऊपर-नीचे करना होता है।

"अरे... बड़ा दिखता है!" अब तक बाकी टोलियों ने भी बूँद में से देखना प्रारम्भ कर दिया था। बस फिर क्या था, बार-बार बूँद बनाना और उसमें से चीज़ों को देखने का सिलसिला थमने का नाम ही नहीं ले रहा था।

बूँद ने कमाल कर दिया था। बच्चे व्यस्त हो गए थे। मास्साब किट में से एक शीशी ले आए थे। अब की बार उन्होंने टोलियों में से एक-एक बच्चे को बुलाकर, काँच की पट्टी पर नारियल के तेल की बूँद टपकाकर, यह कहकर रवाना किया कि अब उसमें से चीज़ों को देखें।

अब बच्चे तेल की बूँद में से देख रहे थे। जब बूँद बिगड़ जाती तो वे मास्साब के पास दौड़कर जाते। मास्साब काँच की पट्टी पर तेल की बूँद टपकाते और बच्चे फिर से बारीक-बारीक चीज़ों को देखने में लग जाते।

एक सवाल से उपजी जिज्ञासा

मास्साब ने अब सवाल पूछा, "किसकी बूँद ज़्यादा गोल बनी? पानी या तेल की?"

चित्र: रंजीत बालमुचु

एक मामूली-से सवाल ने बच्चों को सोचने को बाध्य कर दिया था। बच्चे अब तुलना कर रहे थे कि पानी और तेल में से किसकी बूँद ज़्यादा गोल बनती है। अब तक बच्चे बूँद में से बारीक चीज़ों को देखने का मज़ा ले रहे थे मगर अब वे तुलना के लिए बूँदें बना रहे थे।

कक्षा का समय कब-का पूरा हो चुका था। मास्साब ने बच्चों से कहा, "चलो, अभी बस इतना ही...। देखो... तुमने जो बल्ब से लेंस बनाए थे, चाहो तो घर ले जा सकते हो। ये तुम्हारे अपने ही हैं। बिल्लोरी काँच को यहाँ जमा कर दो। ...हाँ, जब तुम कल स्कूल में आओगे तो फिर से बिल्लोरी काँच दूँगा। इससे अगर आग पैदा करो तो ध्यान रखना। मैं मानता हूँ कि तुम सभी बहुत समझदार और ज़िम्मेदार बच्चे हो।"

नारंगी ने पास में बैठे विष्णु को इशारा किया, "देख रे...। मैं समझदार और ज़िम्मेदार हूँ।"

विष्णु ने पलटकर कहा, "तू अकेली थोड़ी-ही है! सब समझदार और 'ज़िम्मेदार' हैं।"

कक्षा के बच्चों को मास्साब की यह बात बहुत अच्छी लगी कि उनको 'ज़िम्मेदार' कहा गया।

मास्साब ने कहा, "यह बल्ब छोटी चीज़ों को देखने का उपकरण है। जो बूँद बनाई, ये भी एक उपकरण है देखने का। इनकी मदद से तुम ढेरों चीज़ों को बारीकी-से देख सकते हो। ये एक ऐसा उपकरण है जो तुमको आगे की कक्षाओं में भी काम आएगा।"

मास्साब टेबल पर बिखरे हुए चॉक इकट्ठे करते हुए बोले, "और हाँ, कल तुम माचिस के खाली खोखे लेकर आना।"

स्कूल की छुट्टी हो चुकी थी। अपने-अपने घरों पर बच्चे बल्ब के लेंस से अवलोकन कर रहे थे और दूसरों को भी करवा रहे थे। गली में आते-जाते लोग-बाग रुक-रुककर बच्चों के क्रियाकलापों को देखते और ताज्जुब करके आगे बढ़ जाते।

बच्चों को चीज़ों का अवलोकन करते हुए सोचने का एक उपकरण मिल चुका था।

...जारी

कालू राम शर्मा (1961-2021): अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, खरगोन में कार्यरत थे। स्कूली शिक्षा पर निरन्तर लेखन किया। फोटोग्राफी में दिलचस्पी। *एकलव्य* के शुरुआती दौर में धार एवं उज्जैन के केन्द्रों को स्थापित करने एवं मालवा में विज्ञान शिक्षण को फैलाने में अहम भूमिका निभाई।

प्रकाश का अवलोकन

छायाएँ और प्रतिबिम्ब

राजाराम नित्यानन्द

क्या छायाएँ पूरी तरह से अँधेरी होती हैं? क्या कुछ छायाएँ अन्य छायाओं से ज़्यादा गहरी होती हैं? एक मोबाइल फोन के कैमरे तथा मनुष्य की आँख में क्या चीज़ समान होती है? क्या कोई प्राकृतिक पिन-होल कैमरा होता है? यदि हम चाहते हैं कि हमें अपना दाहिना हाथ वैसा ही दिखाई दे जैसा वह दूसरों को दिखता है, तो हमें कितने दर्पणों की ज़रूरत होती है? इस लेख में लेखक ने ऐसे कई सरल तरीकों का ज़िक्र किया है जिनके द्वारा, छायाओं और प्रतिबिम्बों का उपयोग करते हुए, प्रकाश के शिक्षण में दैनिक जीवन के अवलोकनों को अवधारणाओं से जोड़ा जा सकता है।

विज्ञान के किसी भी विषय के बारे में उत्सुकता, प्रेरणा, और एक बुनियादी समझ निर्मित करना हमेशा एक चुनौती होती है। इसके लिए, सारे संसार में चल रही एक लोकप्रिय प्रवृत्ति, विशेष रूप से बनाए गए उपकरणों के माध्यम से, प्रौद्योगिकी - कम्प्यूटर ऐनीमेशन्स और प्रदर्शनों - का इस्तेमाल करना है। यह चलन, विद्यार्थियों के कम उम्र से ही जनसंचार माध्यमों और इंटरनेट के सम्पर्क में आने से, उनमें उपजी हर चीज़ से परिचित होने और इसलिए ऊब जाने के एहसास से उन्हें निकालने का प्रयास करता है, और अब यह भारत में हमारे अपने स्कूलों में भी अपनाया जाने लगा है।

इसमें कोई शक नहीं कि सीखने के रोचक अनुभव निर्मित करने में प्रौद्योगिकी की अपनी उपयोगिता है। लेकिन यह लेख तो सबसे प्राचीन प्रौद्योगिकी - सजीव (अर्थात् कृत्रिम या आभासी नहीं) अवलोकन - के बारे में है। सीधे-सरल अवलोकनों का प्रयोजन, अन्य कमतर विकल्पों की तरह तब इस्तेमाल किया जाना नहीं है जब इंटरनेट, या प्रयोगशाला के संसाधनों का अभाव हो। वे तो उन विद्यार्थियों के लिए भी मूल्यवान हैं जिनकी आभासी संसाधनों तक पहुँच है, क्योंकि अन्ततः विज्ञान वास्तविक संसार के बारे में होता है। प्रत्यक्ष, स्वयं भोगे गए अनुभव, उन अधिक अमूर्त अवधारणाओं और विषयों से

विद्यार्थी को जुड़ने में मदद करते हैं, जिन्हें बाद के वर्षों में स्कूल विज्ञान के अन्तर्गत पढ़ना ज़रूरी होता है। ऐसे जीवन्त जुड़ाव के बिना उन विद्यार्थियों को भी, जो मौजूदा स्कूली व्यवस्थाओं में अच्छा प्रदर्शन करते हैं, जो कुछ वे किताबों और व्याख्यानों से सीखते हैं, उसे नई परिस्थितियों में उपयोग करना कठिन मालूम पड़ सकता है। यहाँ तक कि यदि कोई सिद्धान्त पहले सीखता है, तब भी उसे व्यवहार में लागू होते हुए देखने, और अवलोकनों का इस्तेमाल करते हुए, उससे सम्बन्ध जोड़ने के द्वारा उसकी बेहतर समझ बनाने में, उसे मदद मिलती है। यहाँ सुझाए गए अवलोकन केवल माध्यमिक स्कूलों के विद्यार्थियों के लिए ही नहीं हैं, बल्कि वे उन सभी के लिए हैं, जिनमें शिक्षक भी शामिल हैं, जिन्होंने उन्हें आज़माकर नहीं देखा है।

स्कूल के विज्ञान पाठ्यक्रम में प्रकाश का विषय काफी जल्दी आ जाता है। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि दृष्टि हमारी सबसे शक्तिशाली इन्द्रियों में से एक है। प्रकाश के दो बुनियादी विषय-प्रसंग, छाया तथा प्रतिबिम्ब, सभी पाठ्यपुस्तकों में होते हैं, और उनमें आम तौर पर किरण आरेख होते हैं जो प्रकाश का उसके स्रोत से सीधी रेखाओं में यात्रा करना दिखाते हैं। यह तभी एक आभासी या कृत्रिम अनुभव बन जाता है क्योंकि विद्यार्थी हमेशा ऐसे चित्रों का सम्बन्ध उससे नहीं जोड़ते जो वे वास्तव में देखते हैं, परन्तु वे यह जानते हैं कि परीक्षाओं और साक्षात्कारों में उन रेखाचित्रों को फिर से बनाना ज़रूरी होता है।

लेकिन शिक्षकों के लिए प्रकाश का अध्ययन, उसे ऐसे अवलोकनों से जोड़ते हुए जिन्हें विद्यार्थी स्वयं कर सकते हैं और उनके बारे में विचार कर सकते हैं, विद्यार्थियों में उत्साह जगाने का अवसर प्रदान करता है। लेकिन हम ऐसा कैसे कर सकते हैं?

छायाएँ: पूरी तरह अँधेरी नहीं होतीं!

किसी वस्तु - मान लीजिए कि एक डस्टर - की छाया के बारे में सोचने का एक तरीका है, यह कल्पना करना कि एक छोटा जीव, जैसे कि एक चींटी, दीवार पर बैठी है। हम पूछ सकते हैं कि यदि वह चींटी सूर्य तथा डस्टर के सापेक्ष अलग-अलग स्थानों पर स्थित होती तो वह क्या देखती (चित्र-1 को देखें)। यदि दीवार पर कोई काला बिन्दु है, तो इसका मतलब है कि वहाँ बैठी हुई चींटी के लिए सूर्य के प्रकाश को वस्तु द्वारा पूरी तरह रोक दिया गया है। पर जब हम दीवार के इस बिन्दु से दूर हटते हैं, तो हम गौर करते हैं कि डस्टर की छाया की किनारी तीखी नहीं है (यानी धुँधली है)। यह अवलोकन उस प्राकृतिक घटना का उदाहरण है, जिसे पैनम्बरा (उपच्छाया) कहते हैं। 'पैनम्बरा' बस एक नाम है। क्या यह

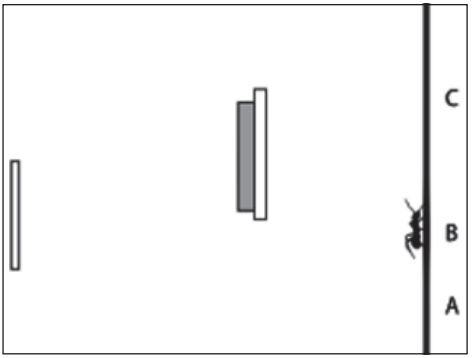

चित्र-1: *क्या छायाएँ पूरी तरह अँधेरी होती हैं? यहाँ बाएँ तरफ की छड़ीनुमा रेखा सूर्य को निरूपित करती है। दीवार पर C स्थिति में चींटी सूर्य के किसी भी भाग को नहीं देख सकती। स्थिति A पर चींटी पूरे सूर्य को देख सकती है। लेकिन स्थिति B पर चींटी आंशिक रूप से सूर्य को देख सकती है। यह भाग सबसे अँधेरे हिस्से और पूरी तरह प्रकाशित हिस्से के बीच में पड़ता है। यह छाया का धुँधला किनारा है।*

कहना बेहतर नहीं होगा कि जब चींटी दीवार पर रेंगती हुई डस्टर की छाया के किनारे से आगे निकलती है, तो वह उस क्षेत्र से निकलती है जहाँ सूर्य पूरी तरह बाधित है, और ऐसे क्षेत्र में आ जाती है जहाँ वह आंशिक रूप से बाधित है (पैनम्बरा), और अन्त में ऐसे क्षेत्र में चली जाती है जहाँ से वह पूरे सूर्य को देख सकती है? (ऐसी किसी वास्तविक छाया के अन्दर जाकर निकलना और सचमुच में खुद सूरज को सीधे देखने की बजाय, इसकी कल्पना करना ही बुद्धिमानी होगी, क्योंकि सूर्य को सीधे देखना आँख को नुकसान पहुँचा सकता है।)

एक अन्य प्रयोग जो आप कर सकते हैं वो तो अक्सर वैज्ञानिकों को भी अचरज में डाल देता है। दोपहर के नज़दीक, सूर्य की रोशनी में दो पेन्सिलों को इस तरह पकड़कर रखें कि उनकी छाया ज़मीन पर पेन्सिलों से एक मीटर से अधिक दूर पड़े। अब एक पेन्सिल को दूसरी के ऊपर लाकर, हम उनकी छायाओं को एक के ऊपर दूसरी, इस तरह चढ़ा दे सकते हैं, और फिर पेन्सिलों की स्थिति बदलकर छायाओं को अलग भी कर दे सकते हैं। आप पाएँगे कि, एक-दूसरे पर पूरी चढ़ने (ओवरलैप या आच्छादन) के ठीक पहले और बाद में छाया ज़्यादा गहरी होती है, और पूरा आच्छादन होने पर जैसे उसमें थोड़ी रोशनी आने से वह हल्की हो जाती है। इसी तरह जब हम पेन्सिलों को आपस में काटते हुए (क्रॉस का निशान बनाते हुए) रखते हैं, तब छाया का सबसे गहरा हिस्सा उनके काटने की जगह पर नहीं होता, बल्कि उसकी दोनों ओर होता है। फिर से इसे ज़मीन पर बैठी हुई एक चींटी के दृष्टिकोण से देखना उपयोगी होगा। इन सारी स्थितियों में छायाओं का अँधेरा इस बात पर निर्भर करता है कि चींटी सूर्य के कितने हिस्से को देख सकती है (चित्र-2 देखें)।

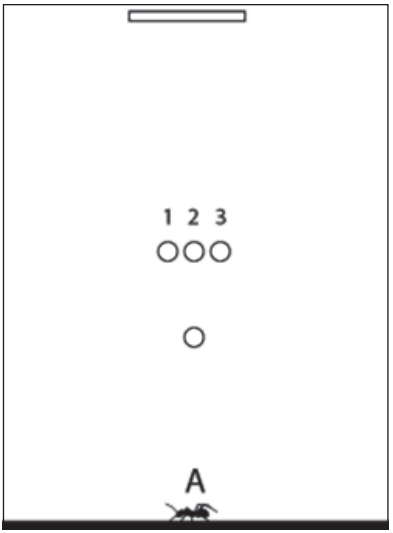

चित्र-2: दो पेन्सिलों की छायाओं का आच्छादन। जब हटाई जाने वाली पेन्सिल बाईं ओर स्थिति-1 पर, या स्थिति-3 पर होती है, तो स्थान A पर बैठी चींटी सूर्य के ज़्यादा बड़े हिस्से को ढँका हुआ देखती है। लेकिन जब वह पेन्सिल स्थिति-2 पर होती है तो पेन्सिलें एक-दूसरे को ढँक लेती हैं, और चींटी को सूर्य का अधिक हिस्सा दिखाई देता है। यह स्थिति A पर, जहाँ छायाओं का आच्छादन यानी ओवरलैप होता है, होने वाली प्रकाश में वृद्धि को समझाता है।

छायाओं के बीच में क्या होता है?

अब हम छाया के विपरीत एक घटना को देखें। जब प्रकाश एक गत्ते के टुकड़े में किए गए छेद में से गुज़रता है, तो हमें छाया के भीतर एक चमकदार प्रकाशित क्षेत्र मिलता है। यदि हम वर्गाकार छेद करें तो हम एक वर्गाकार चमकदार क्षेत्र देखने की, एक त्रिभुजाकार छेद से ऐसा त्रिभुजाकार क्षेत्र देखने की इत्यादि, अपेक्षा करते हैं। और यही हमको दिखता भी है जब हम गत्ते के टुकड़े को दीवार के पास रखते हैं। जब छेद छोटा होता है (मान लीजिए 3 मिलीमीटर के आकार का) और जब हम दीवार से कार्डबोर्ड को दूर हटाते हैं तो एक मज़ेदार घटना घटती है। लगभग आधा मीटर की दूरी पर, प्रकाश का टुकड़ा अधिक गोलाकार दिखाई देने लगता है; लगभग एक मीटर की दूरी पर, हम लगभग वृत्ताकर चकती जैसा क्षेत्र देखते हैं, भले ही छेद त्रिभुज के आकार का रहा हो। इसके अलावा, चमकदार क्षेत्र का आकार भी बढ़ता जाता है।

जैसा कि आपने अनुमान लगा ही लिया होगा, यह वृत्ताकार चमकीला क्षेत्र सूर्य की छवि होता है। यह अवलोकन चित्र-3 में दिखाए गए पिनहोल कैमरा का बुनियादी सिद्धान्त है। इस सरल खिलौने को विद्यार्थी स्वयं अपने लिए बना सकते हैं (बॉक्स 1 देखें)।

हम इस पिनहोल कैमरे के प्रयोग को प्राकृतिक रूप में किसी पेड़ की छाया में देख सकते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि अनियमित आकारों की खाली जगहों के बीच से चमकता सूर्य कैसे छाया में रोशनी के गोलाकार धब्बे छोड़ देता है। सूर्य के आंशिक ग्रहण के दौरान, जो लगभग हर दशक में एक बार भारत में अधिकांश जगहों पर देखा जा सकता है, ये गोले हँसिए के आकार के बाल-चन्द्र

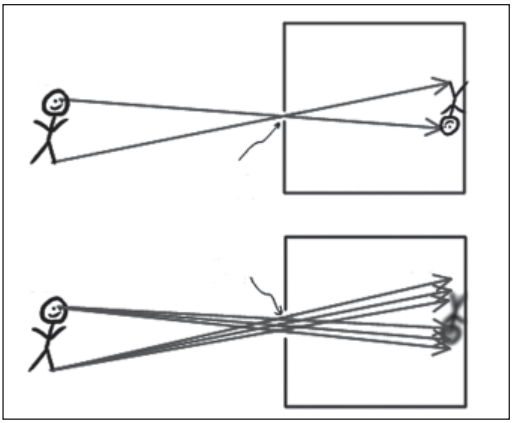

चित्र-3: *किसी वस्तु से आ रही प्रकाश की किरणें, एक गत्ते में किए गए छोटे-से छेद से गुज़रकर, स्क्रीन पर वस्तु की उलटी छवि बनाती हैं। वहीं छेद के बड़े होने पर प्रकाश की अधिक किरणें छेद से गुज़रती हैं, जिससे छवि अधिक चमकदार पर साथ ही, धुँधली हो जाती है।*

(क्रिसेंट) जैसे बन जाते हैं (चित्र-4), जिससे स्पष्ट होता है कि हम वास्तव में छवियाँ देख रहे होते हैं।

छायाओं का एक अन्य रोचक पहलू तब उजागर होता है, जब हम चन्द्रमा को दूरबीन (बायनॉकुलर) से देखते हैं (हालाँकि चन्द्रमा का प्रकाश सूर्य के प्रकाश से बहुत कमज़ोर होता है, परन्तु फिर भी हमें उसकी चमक से सावधान रहना चाहिए)। पूरे चाँद की तुलना में, आधे चाँद पर पर्वतों और खड्डों की स्पष्ट छायाएँ दिखती हैं (चित्र-5)। इसे समझने के लिए अपने विद्यार्थियों से पूछें कि क्या उन्होंने दिन के अलग-अलग समय, धूप में अपनी छायाओं की लम्बाई में कोई बदलाव देखा है? हम सब जानते हैं कि जब सूर्य क्षितिज पर नीचे होता है, तब छायाएँ लम्बी होती हैं, और वे तब गायब हो जाती हैं जब सूरज ठीक सिर पर होता है। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात

बॉक्स 1

मनुष्य की आँख, हमारे सभी अवलोकनों के लिए हमारा बुनियादी उपकरण है, और पिनहोल कैमरा इसके काम करने की प्रक्रिया से विद्यार्थियों का परिचय करवाने का एक अच्छा तरीका है। आँख प्रकाश को संग्रह करने वाला सुन्दर अंग है जो प्रत्येक दिशा से आने वाले प्रकाश की चमक और रंग को दिखाता है। इसे ही हम तस्वीर या छवि कहते हैं। वास्तव में, मोबाइल फोन का कैमरा जिससे अनेक विद्यार्थी परिचित होंगे, पुराने फिल्म-आधारित कैमरों की तुलना में मनुष्य की आँख के ज़्यादा समान होता है। उसमें एक चिप होती है जो आँख के परदे के जैसी होती है, और तार इस चिप को एक कम्प्यूटर से जोड़ते हैं, काफी कुछ वैसे ही जैसे कि प्रकाश-तंत्रिका (ऑप्टिक नर्व) आँख के परदे को मस्तिष्क से जोड़ती है! उसके अलावा फोन के कैमरे में एक सॉफ्टवेयर होता है जो उलटी तस्वीर को सीधा कर देता है। हमारे मस्तिष्क में भी ऐसी ही क्षमता होती है।

चित्र-4: एक पेड़ की छाया में प्रकाश के गोलाकार धब्बे, जो प्राकृतिक पिनहोल्स (पत्तियों के बीच की खाली जगहों) के द्वारा बनाई गई सूर्य की खूब सारी छवियाँ हैं।

नहीं है कि पूर्णिमा के यानी पूरे चाँद के केन्द्र के पास हमें छायाएँ नहीं दिखाई देतीं। यदि कोई वहाँ बैठा होता तो सूर्य उसके सिर के ठीक ऊपर होता। पूरे चाँद की किनार के पास, उसके पर्वत छायाएँ बनाते तो हैं, पर जिस दिशा में सूर्य होता है, उस दिशा से वे दिखाई नहीं देतीं। पर आधे चाँद के साथ यह समस्या नहीं होती, और हमारे देख सकने के लिए छायाएँ पर्याप्त स्पष्ट होती हैं।

दर्पणों से प्रयोग करना

अब हम दर्पणों की ओर मुड़ते हैं, जो अधिकांश बच्चों को तब तक आकर्षित करते रहते हैं, जब तक वे बड़े नहीं हो जाते और दर्पणों को सामान्य वस्तुओं की तरह नहीं लेने लगते। हममें से अधिकांश लोग यह

***चित्र-5** a: पूरे चन्द्रमा की एक तस्वीर। गौर करें कि हमें कोई छायाएँ दिखाई नहीं पड़तीं, हालाँकि वहाँ पहाड़ और घाटियाँ मौजूद हैं।*

***चित्र-5** b: आधे चाँद की एक तस्वीर। अँधेरे और प्रकाशित भागों के बीच की सीमा के नज़दीक स्पष्ट दिख रही छायाओं पर गौर करें। वहाँ स्थित किसी प्रेक्षक को सूर्य क्षितिज के पास दिखाई देगा, इसलिए छायाएँ लम्बी होंगी।*

जानते हैं कि दर्पण हमें जो व्यक्ति दिखाता है, उसका बायाँ हाथ हमारे दाएँ हाथ जैसा होता है। इस परिवर्तन को 'लेटरल चेंज (पहलू का परिवर्तन)' कहा जाता है जो कि एक दुर्भाग्यपूर्ण नाम है, क्योंकि वास्तव में जो चीज़ दर्पण में उलट जाती है, वो वह दिशा होती है जिसमें व्यक्ति देख रहा होता है। हमारे ऊपरी तथा निचले भाग आपस में नहीं बदलते। हमारी भाषा बाएँ और दाएँ को उस दिशा के सापेक्ष परिभाषित करती है जिस दिशा में व्यक्ति देख रहा होता है, लेकिन वह ऊपर और नीचे को पृथ्वी के सापेक्ष परिभाषित करती है।

यह केवल भाषा का मुद्दा नहीं है, बल्कि यह जीवन-मरण का भी सवाल हो सकता है। किसी मरीज़ का ऑपरेशन करने वाले शल्य चिकित्सक को निश्चित रूप से यह स्पष्ट होना चाहिए कि 'बायाँ' कहते समय उसका क्या मतलब है, मरीज़ का बायाँ या खुद शल्य चिकित्सक का बायाँ?

एक अकेला दर्पण हमें वैसा नहीं दिखाता जैसे कि हम दूसरों को दिखते हैं। यह बात खास तौर पर उस व्यक्ति को साफ हो जाती है जो साड़ी जैसा वस्त्र पहने होता है जो कि एक कन्धे पर से होकर जाती है; या ऐसी कमीज़ें पहने हो जिनमें ऊपर एक तरफ जेब होती है। स्वयं को वैसा देखने के लिए, जैसा कि दूसरे आपको देखते हैं, दो दर्पणों का उपयोग करें जिन्हें एक-दूसरे से 90 डिग्री का कोण बनाते हुए रखा गया हो। यदि आपने ऐसे दर्पणों में पहले नहीं देखा है, तो वह आपके लिए एक विचित्र अनुभव हो सकता है। जब आप अपना दायाँ हाथ अपने से दूर ले जाते हैं, तो आपकी छवि भी अपना दायाँ हाथ अपने से दूर ले जाती है (चित्र-6)।

इससे और भी विचित्र अनुभव तब होता है जब कोई ऐसे तीन दर्पणों के संयोजन में देखता है जिन्हें प्रत्येक को एक-दूसरे से 90 डिग्री के कोण पर रखा गया है। ऐसी व्यवस्था की ज्यामिति किसी कमरे की दो दीवारों

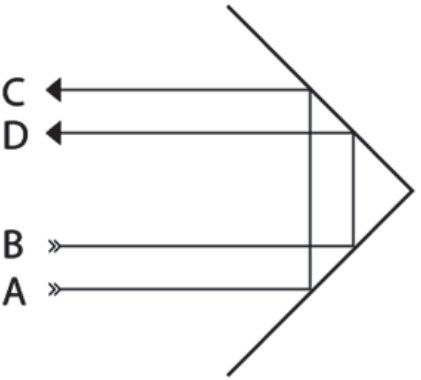

चित्र-6: *ऐसे दो दर्पणों के जोड़े, जिन्हें एक-दूसरे से 90 डिग्री का कोण बनाते हुए रखा गया है, से परावर्तन। जब दर्पण के सामने खड़ा व्यक्ति अपना दायाँ हाथ B से A पर ले जाता है, तब विपरीत पहलू में परावर्तित छवि भी अपना हाथ D से C पर ले जाती है। इसका मतलब है कि वह भी फिर दूर हटते हुए दाएँ हाथ जैसा दिखता है। एक दर्पण के साथ बनने वाली छवि उसी दिशा में अपना बायाँ हाथ ले जाती हुई दिखेगी।*

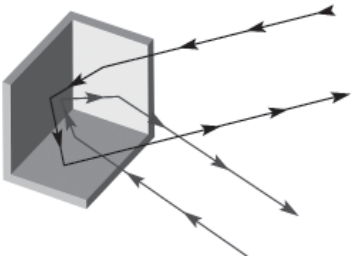

चित्र-7: एक कोने में मिलते हुए तीन दर्पणों की व्यवस्था। किसी भी दिशा से आने वाले प्रकाश को उसी दिशा में वापिस भेज दिया जाता है।

और फर्श के कमरे के एक कोने में मिलने जैसी होती है। इसलिए इसे 'कॉर्नर रिफ्लैक्टर (कोने वाला परावर्तक)' कहा जाता है। कॉर्नर रिफ्लैक्टर में किसी भी दिशा से आने वाली प्रकाश की किरण उसी दिशा में वापिस भेज दी जाती है (चित्र-7)। कोई जब इस तरह रखे हुए दर्पणों में देखता है तो उसे क्या दिखता है? चाहे वह कहीं से भी जाकर देखे, व्यक्ति को अपनी ही आँख कोने में दिखाई देती है।

यह केवल एक कौतूहलपूर्ण तरकीब भर नहीं है, बल्कि वास्तव में बहुत उपयोगी भी है। ऐसे परावर्तक राजमार्गों पर, विशेष रूप से किसी खतरनाक गोलाई वाले मोड़ के किनारे पर, उपयोग किए जाते हैं। किसी भी पास आ रही कार की हैडलाइटें ऐसे परावर्तक को प्रकाशित कर देती हैं, और वह चेतावनी के रूप में रोशनी को वापिस ड्राइवर को भेज देता है। यह बहुत सक्षम व्यवस्था होती है क्योंकि इसे कोई बिजली की ज़रूरत नहीं होती, और यह रोशनी को केवल वहाँ भेजती है जहाँ उसकी ज़रूरत होती है। एक परावर्तन जैसा साधारण विषय आज की अन्तरिक्ष और ऊर्जा प्रौद्योगिकी में बहुत महत्वपूर्ण किरदार अदा कर सकता है। इसका एक प्रभावशाली उदाहरण उस कॉर्नर रिफ्लैक्टर का है जिसे अमेरिकी अन्तरिक्ष यात्रियों ने अपोलो अभियान के दौरान चन्द्रमा पर स्थापित किया था (चित्र 8)। उसका उपयोग करते हुए, वैज्ञानिक पृथ्वी पर एक टैलिस्कोप (दूरदर्शी) से लेज़र प्रकाश की एक बीम (किरण-पुंज) को चन्द्रमा तक भेजने में, और फिर उसी टैलिस्कोप में वापिस पाने में समर्थ हुए। चूँकि वह प्रकाश एक

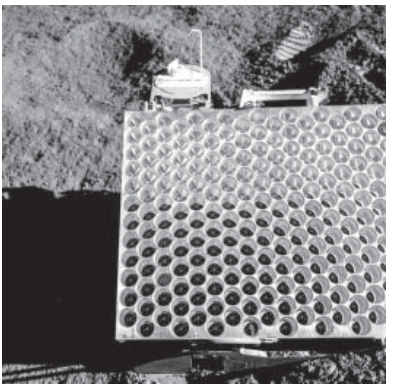

चित्र-8: अपोलो 15 के अन्तरिक्ष यात्रियों के द्वारा चन्द्रमा पर रखा गया कॉर्नर रिफ्लैक्टर्स का एक समूह। इसने चन्द्रमा की दूरी, और वह समय के साथ कैसे बदलती है, इसके बहुत शुद्ध मापन की सुविधा दी।

शॉर्ट पल्स (छोटा कम्पन) था, इसलिए वे चाँद तक की दूरी की एक बेहद सटीक नाप तक पहुँचने की इस यात्रा में लगे समय (लगभग 2.5 सेकण्ड) को नाप सके।

दर्पणों का एक और दिलचस्प उपयोग एक बड़े क्षेत्र में पड़ रहे सूर्य के प्रकाश को संचित करके एक छोटे क्षेत्र में लाने के लिए किया जा रहा है। इसका इस्तेमाल सौर ऊर्जा को उपयोग में लाने के लिए हो रहा है (चित्र-9)।

निष्कर्ष

आज के विद्यार्थी अपने शिक्षकों की अपेक्षा, कहीं अधिक उन्नतिशील प्रौद्योगिकी यानी टेक्नोलॉजी की दुनिया में जीवन बिताएँगे। ऐसी कई प्रौद्योगिकी विधियाँ प्रकाश का भी उपयोग करेंगी। आज भी लेज़र किरणों का उपयोग उद्योग जगत में काटने के लिए किया जाता है। दूसरी ओर लेज़र किरणें नेत्र चिकित्सकों के द्वारा दृष्टि को सुधारने के उद्देश्य से पुतली को सुधरा हुआ आकार देने के लिए भी इस्तेमाल की जाती हैं। फोन पर किए जाने वाले हमारे अधिकांश वार्तालापों और इंटरनेट पर जानकारी की सैर करने जैसे कार्यों में निहित संकेतों को ले जाने का काम भी ऑप्टिकल फाइबर्स के माध्यम से प्रकाश ही करता है। भविष्य में भी, अनेक नई, आश्चर्यजनक और उपयोगी चीज़ें निश्चित ही

चित्र-9: *स्पेन के एक पावर प्लांट का चित्र जो विद्युत उत्पादन करने वाले जनरेटरों को चलाने वाली भाप बनाने के लिए कोयले की बजाय सूर्य की ऊर्जा का उपयोग करता है। हवा में मौजूद धूल के कारण, हम वास्तव में सूर्य की किरणों के पथ को देख सकते हैं।*

प्रकाश की हमारी समझ से निकलकर सामने आएँगी। जो विद्यार्थी विज्ञान या इंजीनियरिंग को अपना कार्यक्षेत्र बनाएँगे, वे प्रकाश के बारे में और भी बहुत कुछ सीखेंगे। परन्तु, प्रकाश के सबसे बुनियादी सिद्धान्तों को सभी लोगों को समझना और सराहना चाहिए, और वे ऐसा कर भी सकते हैं - इन्हीं सिद्धान्तों में से कुछ को इस लेख में प्रस्तुत किया गया है। ऐसे उदाहरणों का प्रयोजन पाठ्यपुस्तक और कक्षा में होने वाले शिक्षण की जगह लेना नहीं है, बल्कि पढ़ाई गई अवधारणाओं को समझने के लिए कुछ उत्साह पैदा करना है। और ऊँची कक्षाओं में, ये प्रयोग बेहतर ढंग से इस बात को सराहने में हमारी मदद कर सकते हैं कि किस तरह से प्रकाश किरणों जैसी सरल किन्तु व्यापक अवधारणाएँ, हमारे आसपास की बहुत-सी चीज़ों को समझने में हमें समर्थ बनाती हैं।

राजाराम नित्यानन्द: वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी, बैंगलोर में पढ़ाते हैं। इससे पहले वे रमन रिसर्च इंस्टीट्यूट में कार्यरत थे। वे अभी विज्ञान पत्रिका *रिज़ोनेन्स* के सम्पादक भी हैं। उनका अधिकांश शोधकार्य सैद्धान्तिक रहा है, और भौतिकशास्त्र के प्रकाश तथा ऐस्ट्रोनॉमी से सम्बन्धित क्षेत्रों में रहा है, इसलिए उसमें गणित और गणनाएँ भी निहित रही हैं। राजाराम को विद्यार्थियों और सहयोगियों - जिनमें से कई प्रयोग करने वाले वैज्ञानिक, और उनकी संस्था से बाहर के लोग होते हैं - के साथ काम करने में आनन्द आता है।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: भरत त्रिपाठी: *एकलव्य*, भोपाल के प्रकाशन समूह के साथ कार्यरत हैं।

यह लेख *आई-वण्डर* पत्रिका के अंक-जून 2021 से साभार।

और फिर उन्होंने एक गहरी साँस ली!

मृणाल शाह

जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं, वे अलग-अलग तरीकों से अपने आसपास की दुनिया को समझने की कोशिश करते हैं। थोड़ी समझ उनके अपने अवलोकनों के कारण विकसित होती है, थोड़ी अपने माता-पिता या परिवार के अन्य सदस्यों की बातचीत सुनकर, तो थोड़ी लोकप्रिय माध्यमों से मिलने वाले सन्देशों से। शिक्षक और पाठ्यपुस्तकें भी बच्चों के ज्ञान के इस भण्डार में इज़ाफा करते हैं। बहरहाल, अक्सर बच्चे वास्तविक दुनिया के अनुभवों से जो समझ विकसित करते हैं, वह कक्षा में सीखी गई बातों से भिन्न होती है। स्कूली शिक्षा बिरले ही इस दोहरी, समानान्तर समझ पर कोई काम करती है।

हमने श्वसन पर एक मॉड्यूल बनाया जिससे बच्चों के सहजबोध को पहचान सकें, और जिसकी मदद से इस अवधारणा को बेहतर ढंग से समझ सकें। शिक्षिका ने कक्षा की शुरुआत बच्चों से यह कहते हुए की कि वे सब दो-चार गहरी साँसें लें। थोड़ी शुरुआती हिचक के बाद बच्चे मान गए और गहरी साँसें लेने लगे।

"हम साँस के ज़रिए अपने भीतर हवा लेते हैं या ऑक्सीजन?" शिक्षिका ने पूछा।

पूरी कक्षा ने एकमत होकर ज़ोर-से जवाब दिया, "ऑक्सीजन।"

"पर पिछले साल हमने पढ़ा था कि हवा कई गैसों का मिश्रण है; है न? तो हम साँस में केवल ऑक्सीजन कैसे लेते हैं?" शिक्षिका ने पूछा।

इससे बच्चे चकरा गए। थोड़ा सोचने के बाद, एक विद्यार्थी ने कहा, "हमारी नाक में जो बाल हैं, वो हवा में से ऑक्सीजन को अलग करने में मदद करते हैं।"

एक अन्य विद्यार्थी ने कहा, "पर ऑक्सीजन तो बहुत छोटी होती है। हमारी नाक के अन्दर के बाल तो सिर्फ बड़े कणों को ही पकड़ सकते हैं।"

दोनों के पास अपनी बात पर यकीन करने के कारण थे। उन्होंने इस विषय में परिकल्पनाएँ बनानी शुरू कर दीं कि कैसे हम हवा में मौजूद गैसों के मिश्रण में से केवल ऑक्सीजन को साँस के ज़रिए अन्दर लेते हैं। दोनों के नज़रियों को कई अन्य अलग-अलग विद्यार्थियों ने समर्थन दिया। इससे एक बहस की शुरुआत हो गई। दोनों पक्ष उदाहरण और प्रति-उदाहरण देने लगे। बच्चों को यूँ सोचते, बहस करते, और सबसे अहम – एक वैज्ञानिक चर्चा में भाग लेते देखना – बहुत सुखद था। ये एक ऐसा मौका था जो पारम्परिक शिक्षण में कम ही मिलता है।

इस बिन्दु पर एक लड़की, जो अब तक बिलकुल चुप थी, ने हाथ उठाया और बोली, "पर शुद्ध ऑक्सीजन तो ज्वलनशील है। अगर हम शुद्ध ऑक्सीजन साँस में लें तो हमारे अन्दर आग नहीं लग जाएगी?"

एक और विद्यार्थी ने ध्यान दिलाया, "अगर हम हवा को साफ करके साँस में सिर्फ ऑक्सीजन ले सकते तो हमें मास्क पहनने की ज़रूरत ही न होती। तब तो हवा के प्रदूषण की समस्या ही खत्म हो जाती!"

परिकल्पनाओं को जाँचना

विद्यार्थियों के सामने बस तथ्यों को उछालने की बजाय उनकी शिक्षिका ने उन्हें और भी गहरे अवलोकनों व दिमागी प्रयोगों से गुज़रने दिया, ताकि वे अपनी परिकल्पनाओं को जाँच सकें। मसलन, इस परिकल्पना के बारे में जाँचने के लिए कि नाक हवा में मौजूद गैसों के मिश्रण में से ऑक्सीजन को छानकर अलग कर सकती है, उन्होंने नाक के अन्दरूनी भाग के चित्र दिखाए। इससे यह साफ दिखाई दिया कि नाक में छन्नी जैसा कोई यंत्र मौजूद नहीं है।

जब अवलोकन और प्रयोगों के नतीजे परिकल्पनाओं से मेल नहीं खा पाए, तब शिक्षिका ने ऐसे मौकों का लाभ उठाकर इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि ऐसे में परिकल्पनाओं पर पुनर्विचार करने या उन्हें बदलने की ज़रूरत हो सकती है। काफी सोच-विचार और अपनी शिक्षिका की मदद के बाद, विद्यार्थी इस नतीजे पर पहुँचे कि हम साँस के ज़रिए अपने अन्दर हवा लेते हैं, केवल ऑक्सीजन नहीं।

अवलोकन से तर्क-वितर्क की ओर

इस गरमागरम चर्चा के बाद शिक्षिका ने कक्षा को स्थिर हो जाने के

लिए थोड़ा वक्त दिया। फिर उन्होंने अगला सवाल पूछा, "आप क्या सोचते हैं कि हम साँस कैसे लेते हैं?"

रोचक बात थी कि अधिकांश बच्चे यही मानते थे कि हमारी नाक में कुछ मांसपेशियाँ होती हैं जो हवा को खींचने में हमारी मदद करती हैं। हल्के-से मुस्कराते हुए, शिक्षिका ने विद्यार्थियों को अपने श्वसन का और अधिक बारीकी-से अवलोकन करने एवं अपने अवलोकन को रिकॉर्ड करने को कहा। कुछ बच्चों ने कहा कि उन्होंने अपनी छाती को फूलते देखा। वहीं कुछ ने कहा कि उन्होंने ठण्डी हवा को नाक से अन्दर आते हुए महसूस किया। कुछ बच्चों ने यह भी कहा कि उन्होंने देखा कि उनकी नाक की मांसपेशियाँ साँस लेते समय ज़्यादा हिली-डुली नहीं। सभी चकराए हुए थे कि हम आखिर कैसे इतनी सारी हवा, साँस के ज़रिए, अन्दर लेते और बाहर छोड़ते हैं।

"ऐसी क्या प्रणाली है जो इसका नियमन कर रही है?" शिक्षिका ने फिर पूछा।

विद्यार्थियों में काफी चर्चा हुई पर वे किसी नतीजे तक नहीं पहुँच पाए। कक्षा में बढ़ रही उकताहट को भाँपते हुए शिक्षिका ने उनको हाल ही में हवा के विषय पर पढ़े गए एक पाठ की याद दिलाई। "क्या आपको याद है कि हवा कैसे एक जगह से दूसरी जगह चलती है?" उन्होंने पूछा।

कई बच्चों ने फटाफट जवाब दिए और सुझाया कि हवा उच्च दाब की जगह से कम दाब वाली जगह पर जाती है।

"सही! तो क्या अब तुम श्वसन की प्रक्रिया के बारे में सोच पा रहे हो?" शिक्षिका ने पूछा।

"हाँ!" एक विद्यार्थी ने उत्साह के साथ कहा, "जब बाहर हवा का दाब ज़्यादा हो तो हवा हमारे शरीर के अन्दर आएगी। और जब बाहर का दाब कम हो तो हवा बाहर निकल जाएगी।"

इस विद्यार्थी के दोस्त ने तुरन्त ही उसकी बात को काटा, "हमारे आसपास हवा का दबाव इस तरह हर घड़ी बदलता थोड़े ही है!"

"आप क्या सोचते हो?" शिक्षिका ने पूरी कक्षा की तरफ देखते हुए पूछा। जब कक्षा फिर एक जोशभरी चर्चा में लग गई, तो शिक्षिका खुशी से दमकीं।

आखिर पता लगा लिया

शिक्षक के सवाल पर कुछ क्षण गौर करने के बाद एक लड़के ने सुझाया, "हमारे शरीर के अन्दर का दाब बदलता रहता है। इससे हवा को अन्दर खींचते और बाहर धकेलते हैं।"

कक्षा अब श्वसन की सही प्रक्रिया के बारे में पता लगाने के बहुत करीब थी। इसके लिए उन्होंने फेफड़ों के मॉडल के रूप में एक उपकरण की

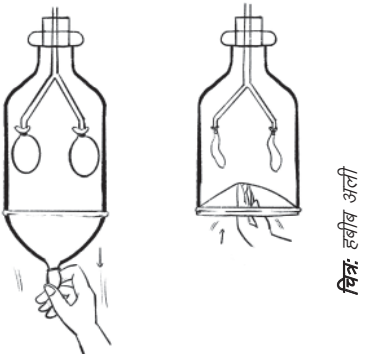

चित्र: हबीब अली

चित्र-1: *गुब्बारों और बोतल से बना फेफड़ों का मॉडल। इसके इलास्टिक तल को नीचे खींचने पर (बाएँ) बोतल में हवा का दाब कम हो जाता है, जिससे गुब्बारों में हवा भर जाती है। वहीं तल को ऊपर की तरफ दबाने से (दाएँ) अन्दर की हवा का दाब बोतल के बाहर की हवा के दाब के मुकाबले बढ़ जाता है, जिससे गुब्बारों से हवा बाहर निकल जाती है। इसी तरह, फेफड़ों से साँस ली और छोड़ी जाती है।*

मदद ली (चित्र-1)। उस उपकरण में अँग्रेज़ी के अक्षर T के आकार के एक जोड़ के दो छोरों पर दो गुब्बारे लगे थे, जो एक खाली बोतल के अन्दर थे, और बोतल के तले को खींचने के लिए एक इलास्टिक लगी थी। इस उपकरण की मदद से प्रयोग करते हुए उन्होंने जल्द ही यह पता लगा लिया कि हवा का दाब किसी बन्द जगह (cavity) में कैसे बदल सकता है। और फिर मिल-जुलकर उन्होंने श्वसन की प्रक्रिया का तोड़ निकाल लिया। इससे खुश होकर, सबने एक लम्बी गहरी साँस ली।

मृणाल शाह: सीड2सेपलिंग एजुकेशन (Seed2Sapling Education) में साइंस एजुकेटर हैं। वह ऐसी कक्षाएँ बनाने में शिक्षकों की मदद करती हैं जहाँ छात्रों को दुनिया के बारे में अपने स्वयं के ज्ञान का निर्माण करने का अवसर मिलता है। उनका मानना है कि इस तरह से सीखना शिक्षकों और छात्रों, दोनों के लिए एक आनन्दमय प्रक्रिया बन जाती है। उनसे shah.mrinal@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: टुलटुल बिस्वास: एकलव्य, भोपाल में कार्यरत। कई सालों तक बच्चों के सहज जीवन पर आधारित किताबें, पत्रिकाएँ और अन्य पठन सामग्री बनाने में अहम भूमिका निभाई। इन दिनों शिक्षक शिक्षा, प्रसार और पैरवी का काम कर रही हैं।

पहेलियों के माध्यम से गणित सीखें

रोस्सी और शिखा

कोई हल न होना भी एक अच्छा हल है

गणित की पहेलियों को प्राय: गणित के हाशिए पर माना जाता है और इन्हें विषय का मूल हिस्सा नहीं माना जाता। कारण यह हो सकता है कि कई बार हमारा सामना ऐसी पहेलियों से भी होता है जिनका कोई हल नहीं होता। गणित का अध्ययन करने वालों तथा स्कूली बच्चों में अक्सर यह धारणा होती है कि गणितीय सवालों के जवाब होने ही चाहिए। इस आलेख में हम कहना चाहते हैं कि पहेलियाँ गणित के कुछ बुनियादी विचारों को सीखने का अहम स्रोत हो सकती हैं। हम अपने दावे के समर्थन में एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं जो यह बताता है कि ऐसे गणितीय सवाल जिनका कोई हल नहीं होता, वे भी गणित के शिक्षण और प्रशिक्षण के लिए उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने कि सुलझाए जा सकने वाले सवाल।

भूमिका

अक्सर पहेलियों को खेल अथवा गणित की नियमित कक्षाओं से इतर फ़ुरसत में की जाने वाली गतिविधि माना जाता है। लक्ष्य आम तौर पर यह देखना होता है कौन कितनी जल्दी उसे हल करता है और उसे हल करने का सबसे छोटा और सम्भवत: सबसे तेज़ तरीका क्या है। परन्तु, यह जानते हुए भी कि उनकी प्रकृति गणितीय है, उन्हें 'गहन गणित से सम्बद्ध' नहीं माना जाता।

इन पहेलियों में गणित के सभी तत्व और विषयवस्तु विद्यमान होते हैं: प्रमाण (उपपत्ति), सामान्यीकरण, पैटर्न पहचानना, किसी कथन को सत्य मानकर उसका खण्डन करना, किसी हल का न होना, आदि। इस आलेख में हम एक पहेली प्रस्तुत कर रहे हैं जिसका उपयोग दो सार्वजनिक कार्यक्रमों में प्रतिभागियों के साथ कुछ बुनियादी गणितीय विचारों पर चर्चा के लिए किया गया था। प्रतिभागियों में कक्षा चार के छात्रों से लेकर बी.एड. स्नातक तक शामिल थे। इन कार्यक्रमों के लिए हमने कुछ

ऐसी पहेलियाँ या प्रश्न तैयार किए थे जिन्हें हल करने के लिए लीक से हटकर तरीकों की ज़रूरत थी।

'लीक से हटकर' से हमारा तात्पर्य है कि इन सवालों के हल प्रारम्भिक गणित, एक सुपरिभाषित पाठ्यक्रम, अथवा एक एल्गोरिदम (सूत्रविधि) तक सीमित नहीं थे। हमारे विचार के मूल में एक बात यह भी थी कि पहेली ऐसी होनी चाहिए जो छात्रों को गणित की कुछ महत्वपूर्ण अवधारणाएँ समझने का मौका दें।

पहेली : वृत्त एवं गोटियाँ

लेख के अन्त में जिस पुस्तक का ज़िक्र है, उसमें हमारा सामना इस पहेली से हुआ।

एक वृत्त छह खण्डों में बँटा हुआ है और उनमें से प्रत्येक में एक काउंटर अर्थात गोटी है। आपको सभी गोटियों को एक खण्ड में लाना है और इसके लिए छलांग का प्रयोग किया जा सकता है। इस दौरान इन दो नियमों का पालन करना होगा:

1. एक छलांग में गोटी केवल पास वाले किसी खण्ड में जा सकती है।
2. हर चाल में दो छलांग लगाई जाएँगी।

इस पहेली के मूल में द्विभाज्यता (parity) और अपरिवर्तनीयता (invariance) हैं तथा प्रस्तावित जवाब यह है कि *इसका कोई हल नहीं है।* इस दावे का प्रमाण निम्नानुसार है।

खण्डों को 1 से 6 तक क्रमांक दीजिए, प्रत्येक खण्ड के क्रमांक और उसमें रखी गोटियों की संख्या का गुणनफल निकालिए। मान लेते हैं कि इन गुणनफलों का योग s है। हम इसे 'स्कोर' कहेंगे। खेल के आरम्भ में हर खण्ड में एक गोटी है तो स्कोर है 1+2+3+4+5+6 = 21 (देखें चित्र-1)।

पहली चाल में मान लीजिए कि एक गोटी खण्ड 2 से छलांग लगाकर खण्ड 3 में जाती है और एक गोटी खण्ड 4 से खण्ड 5 में जाती है

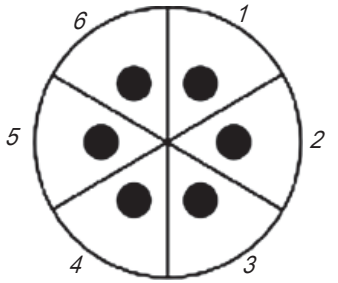

चित्र-1: *छह खण्डों में बँटा वृत्त जहाँ प्रत्येक खण्ड में एक गोटी है।*

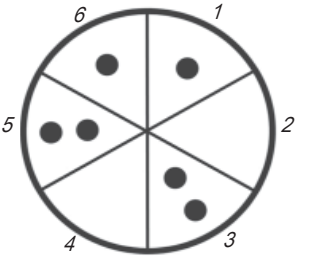

चित्र-2: *एक गोटी खण्ड 2 से छलांग लगाकर खण्ड 3 में गई और एक गोटी खण्ड 4 से खण्ड 5 में गई। नया स्कोर हुआ 23.*

(देखें चित्र-2)। तो नया स्कोर होगा 1+0+(2×3)+0+(2×5)+6 = 23. ध्यान दीजिए कि स्कोर में दो अंकों की वृद्धि हुई है। थोड़ा-सा विचार करने पर पता चलेगा कि चालें चाहे जैसी चली जाएँ, स्कोर हमेशा एक सम संख्या में बदलता है, 0, 2, 4 या 6.

चूँकि s का आरम्भिक मान 21 है जो कि एक विषम संख्या है इसलिए s का मूल्य हर चाल के बाद विषम होगा। परन्तु यदि सभी गोटियाँ एक ही खण्ड में पहुँच जाएँ तो s का मान निश्चित तौर पर 6 का गुणक होगा यानी सम संख्या होगा। लिहाज़ा, इस पहेली का कोई हल नहीं हो सकता।

हमें यह बात रोचक लगी कि पहेली का कोई हल नहीं है। फिर हमने सोचा कि बच्चे और शिक्षक ऐसी गणितीय समस्या को कैसे देखेंगे जिसका कोई हल ही न हो। अक्सर ऐसे सवालों को गलत या अपर्याप्त जानकारी वाला मानकर खारिज कर दिया जाता है। परन्तु शिक्षकों और छात्रों के लिए यह जानना रोचक और महत्वपूर्ण है कि गणितीय दृष्टि से 'कोई हल न होना भी एक वैध हल है'।

हम यह भी तभी कह सकते हैं कि किसी समस्या का कोई हल नहीं है, जब हमारे पास ऐसा दावा करने का स्पष्ट प्रमाण हो।

ये दोनों महत्वपूर्ण गणितीय विचार हैं: पहला, यह कि 'कोई हल न होना' गणित में मान्य बात है और दूसरा, इस दावे के लिए प्रमाण की आवश्यकता होती है कि किसी समस्या-विशेष का कोई हल नहीं है।

ये दोनों बातें फिलहाल हमारे गणित शिक्षण की समझ का हिस्सा नहीं हैं, खास तौर पर प्राथमिक स्तर पर। प्रमाणों को अमूर्त माना जाता है और विद्यालयीन पाठ्यक्रम में उन्हें बहुत बाद में शामिल किया जाता है। इसके अतिरिक्त बिना हल वाले सवालों या एकाधिक हल वाले सवालों पर शायद ही कभी चर्चा होती है। जब हम इन बातों को ध्यान में रखकर पहेली पर काम कर रहे थे तो हमने इसमें शामिल विभिन्न परिवर्तियों (वेरिएबल्स) के बारे में सोचना शुरू किया और यह भी कि कैसे उन्हें बदलने से सवाल बदल जाएगा। परिवर्तियों में गोटियों की संख्या, उनकी स्थिति और उछालों की संख्या शामिल थे।

उदाहरण के लिए, पहेली में हर खण्ड में केवल एक गोटी है। यदि इसकी जगह दो या अधिक गोटियाँ होतीं तो? यदि हर चाल में छलांगों की संख्या बढ़ा दी जाए तो क्या होगा?

जब हमने इन परिवर्तनों के साथ काम किया तो ये भी हमें बहुत रुचिकर नहीं लगे। समझाते हैं कि ऐसा क्यों हुआ। हर खण्ड में अधिक गोटियाँ रखने से यह अधिक चुनौतीपूर्ण नहीं बल्कि थकाऊ प्रक्रिया

बन जाती है। साथ ही, यह विस्तार बहुत छोटे बच्चों के लिए उपयुक्त नहीं होगा। (हमारा लक्ष्य छोटे बच्चे थे क्योंकि अभी उनका सामना 'प्रमाण और प्रमाणित करने' से नहीं हुआ था।) इसलिए हमारे मन में सन्देह था कि इससे पहेली अधिक रोचक बनेगी भी या नहीं।

दूसरी बात, हमने पाया कि छलांग की संख्या या तो विषम हो सकती है या सम। *विषम* छलांग में यह 1-1 छलांग के समान ही आगे बढ़ेगी और *सम* छलांग से 2-2 में। इसमें कुछ भी चकराने वाला नहीं था!

परन्तु एक अन्य परिवर्तन हमें ज़्यादा रोचक लगा: वृत्त में खण्डों की संख्या में बदलाव। हमने यह देखने का प्रयास किया कि क्या एक ऐसे वृत्त में इस कार्य को पूरा किया जा सकता है जो n खण्डों में बँटा हो, जबकि n का मान 2 और 10 के बीच हो। तब हमने एक पैटर्न की तलाश की। इस परिवर्तित पहेली पर काम करते हुए हमारा ध्यान कुछ रोचक गणितीय प्रक्रियाओं पर गया। इसमें खेल-खेलते एक सामान्यीकृत पैटर्न पहचानना और n के वे मान पता करना जहाँ हल उपलब्ध हो और जहाँ हल उपलब्ध न हो, प्रत्येक मामले में प्रमाण तलाश करना आदि शामिल थे। यहीं पर गणितीय जुड़ाव के सभी तत्वों का अनुभव हुआ।

'चाय एंड व्हाय' की तस्वीरें

संशोधित सवाल और छात्रों के हल

हमने संशोधित प्रश्न को विभिन्न आयु वर्ग के छात्रों के समक्ष प्रस्तुत किया। इसके बाद हमने उनकी रणनीतियों की छानबीन की। उनके समक्ष प्रस्तुत समस्या इस प्रकार थी:

एक वृत्त n खण्डों में विभाजित है और उनमें से प्रत्येक में एक गोटी है। आपको छलांगों के माध्यम से उन सभी को एक खण्ड में लाना है। इस दौरान आपको निम्नलिखित नियमों का पालन करना है:

1. *एक छलांग में एक गोटी केवल पास के खण्ड में जा सकेगी।*
2. *प्रत्येक चाल में दो छलांग लगाई जा सकेंगी।*

सवाल यह था कि n के किस मान पर हम सभी गोटियों को एक खण्ड में ला सकेंगे? आपने ऐसा क्यों कहा?

विभिन्न कक्षाओं के छात्रों के बड़े-बड़े समूहों के साथ संवाद से बहुत लाभ हुआ और हमें यह अवसर दो जगह मिला।

एक अवसर था मुम्बई स्थित होमी भाभा सेंटर फॉर साइंस एजुकेशन में आयोजित 'राष्ट्रीय विज्ञान दिवस', जबकि दूसरा अवसर था लोकप्रिय व्याख्यान शृंखला 'चाय एंड व्हाय'। (यह टी.आई.एफ.आर. द्वारा आयोजित एक सार्वजनिक गतिविधि है। इसका आयोजन हर माह के दूसरे और चौथे रविवार को क्रमश: मुम्बई के जुहू स्थित पृथ्वी थिएटर और माटुंगा स्थित रूपारेल कॉलेज में होता है, जहाँ टी.आई.एफ.आर. के सदस्यों के व्याख्यान होते हैं। 'चाय एंड व्हाय' का लक्ष्य मूलत: गणित और विज्ञान को लोकप्रिय बनाना है।

हमने विविध प्रतिभागियों से चर्चा की। इनमें बच्चे और वयस्क (गणितज्ञ, भौतिकीविद सहित) सभी शामिल थे। हम यह देखने को उत्सुक थे कि विभिन्न आयु वर्ग के इन लोगों से किस तरह के प्रमाण सामने आते हैं। हम दो रोचक और प्रतिनिधिक हल साझा कर रहे हैं।

पर्याप्त समय दिए जाने के कारण सभी छात्र, यहाँ तक कि कक्षा-4 के छात्र भी एक सामान्य पैटर्न निकाल पाए। उन्होंने पता लगाया कि खण्डों की सभी विषम संख्याओं के लिए और उन संख्याओं के लिए भी समस्या का हल मौजूद है जो 4 से विभाज्य हैं। परन्तु उनमें से कई विश्वासपूर्वक यह नहीं कह पाए कि 4 से विभाजित न हो सकने वाली सम संख्याओं के लिए हल उपलब्ध नहीं हैं: उदाहरण के लिए 10. इसके अलावा जब उनसे पूछा गया कि वे यह कैसे कह सकते हैं कि 4 से विभाज्य सभी सम संख्याओं के लिए हल मौजूद है तो अधिकांश छात्रों ने केवल छोटी संख्याओं के उदाहरण ही दिए। समस्या को हल करने का उनका सामान्य तरीका आज़माइशी विधि पर आधारित था: n को 10 से कम लेकर

हल निकालो और उसके बाद सामान्यीकरण करो। परन्तु उनमें से कोई भी ठीक से यह नहीं समझा पाया कि n = 2 या n = 6 के लिए कोई हल क्यों मौजूद नहीं है।

एक छात्र प्रमाण के काफी करीब पहुँचा। उसने यह बताने के लिए कि आखिर क्यों n = 6 अन्य से अलग है, कुछ बातें कहीं। उसने कहा: "माना कि हम एक खण्ड (लक्ष्य) को उस स्थान के रूप में चुनते हैं जहाँ सभी गोटियाँ एकत्रित होनी चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि उसी खण्ड की गोटी को वहाँ पहुँचने के लिए 0 छलांग की आवश्यकता है। इसी प्रकार इसके दो निकटस्थ खण्ड में मौजूद गोटियों में से प्रत्येक को एक-एक छलांग की आवश्यकता होगी, उनके निकटस्थ खण्डों की हरेक गोटी को दो छलांग की आवश्यकता होगी। इस प्रकार हम पाते हैं कि अन्तिम खण्ड में पहुँचने के लिए जिन कुल छलांगों की आवश्यकता है, वह n = 6 या 2 के लिए विषम होगी, लेकिन n के अन्य मानों के लिए सम होगी।" निश्चित रूप से जिस खण्ड की गोटी को अन्तिम खण्ड में पहुँचने के लिए 1 छलांग की ज़रूरत होगी, यदि उसे विपरीत दिशा में चलाया जाए तो अन्तिम खण्ड तक पहुँचने के लिए उसे 5 छलांगों की आवश्यकता होगी। परन्तु इसमें योग की द्विभाज्यता बरकरार रहती है। 'समद्विभाज्यता' से तात्पर्य इस बात से है कि कोई पूर्णांक संख्या सम है या विषम। ध्यान रहे कि किसी पूर्णांक में सम संख्या जोड़ने से द्विभाज्यता बरकरार रहती है और विषम संख्या जोड़ने से द्विभाज्यता विपरीत हो जाती है। 'द्विभाज्यता अपरिवर्तनीयता (parity invariance)' का उपयोग सवालों को हल करने और प्रमाण की रचना करने के लिए किया जाता है।

यद्यपि वह इतने पर ही रुक गया लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि उसका कथन एक वैध प्रमाण के लिए अच्छा प्रस्थान बिन्दु था, यदि और समय दिया जाता तो सम्भवत: वह उसे पूरा कर देता। उसके प्रमाण को समझने और विस्तार देने के लिए हम इस तर्क को आगे बढ़ाते हैं। यदि n विषम हो तो किसी खण्ड की गोटी को एक ही दिशा से लक्ष्य तक पहुँचने लिए विषम संख्या में छलांगों की आवश्यकता है तो इसके ठीक विपरीत दिशा में जाने के लिए उसे सम संख्या में छलांगों की ज़रूरत होगी। इस प्रकार हम प्रत्येक गोटी के लिए एक उचित दिशा चुन सकते हैं ताकि सम संख्या में छलांगों की मदद से लक्षित खण्ड तक पहुँच जाएँ। यदि n 4 से विभाज्य हो तो लक्षित खण्ड से एकदम विपरीत स्थित खण्ड तक पहुँचने के लिए सम संख्या में छलांगों की आवश्यकता होगी। शेष खण्ड सममित ढंग से व्यवस्थित हैं। ऐसे में, ऐसे प्रत्येक खण्ड का एक संगत खण्ड होगा जिसे लक्ष्य तक पहुँचने

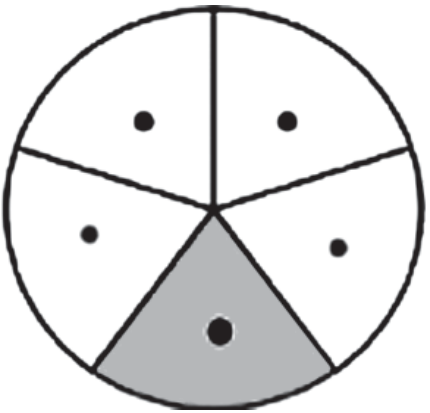

चित्र-3: वृत n = 5 खण्डों में बँटा हुआ है और निचला खण्ड 'लक्ष्य' है।

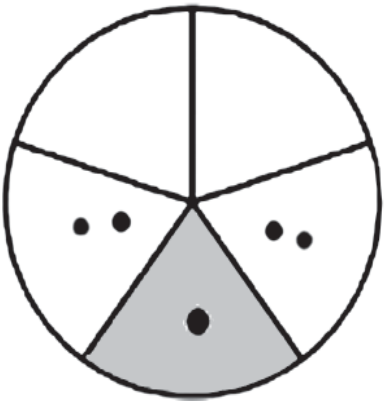

चित्र-4: दो छलांग वाली एक चाल के बाद n = 5 के लिए पहेली की स्थिति

के लिए समान संख्या में छलांग की आवश्यकता होगी।

हमारा प्रमाण (उपपत्ति)

हमारी उपपत्ति भी उस छात्र द्वारा बताए अनुरूप ही थी। मान लेते हैं कि n वृत्त के खण्डों की संख्या है। तब n या तो विषम होगा या 4 से विभाज्य होगा या सम होने के बावजूद 4 से विभाज्य नहीं होगा।

जब n विषम है: आइए, एक खण्ड को लक्ष्य के रूप में चुनते हैं (देखिए चित्र-3)। अब हमारे पास गोटियों की एक सम संख्या है जिसे उस खण्ड में पहुँचाया जाना है। ये खण्ड सममित ढंग से व्यवस्थित हैं और उनकी गोटियों की दो-दो छलांगों की चाल में लक्ष्य तक पहुँचाया जा सकता है: यानी लक्ष्य की दिशा में एक गोटी की एक छलांग, उसके बाद सममित ढंग से एक संगत गोटी की छलांग। पहली चाल के बाद पहेली किस स्थिति में होगी, यह चित्र-4 में दिखाया गया है। इसलिए यदि n विषम है तो हम हर बार सभी गोटियों को एक साझा त्रिज्खण्ड में पहुँचा सकते हैं।

जब n 4 से विभाज्य है: किसी एक खण्ड को लक्ष्य के रूप में चिह्नित कीजिए (चित्र-5)। चूँकि n 4 का गुणज है इसलिए लक्ष्य के ठीक विपरीत गोटी को वहाँ तक पहुँचने के लिए सम संख्या में छलांगों की ज़रूरत होगी। एक बार पुन: हमारे पास सम संख्या में गोटियाँ बची हैं जो सममित ढंग से व्यवस्थित हैं। इन्हें ऊपर विषम खण्डों में विभाजित वृत्त के लिए वर्णित ढंग से ही लक्ष्य तक ले जाया जा सकता है। इस प्रकार

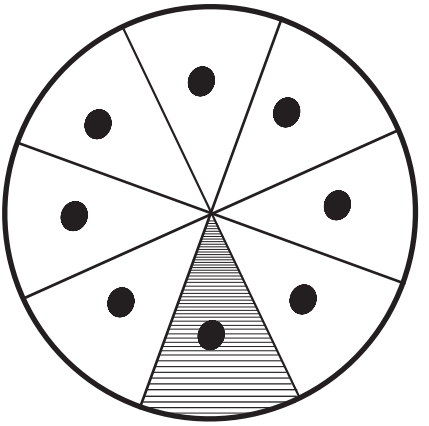

चित्र-5: चार के गुणज में खण्डों का एक उदाहरण। आठ खण्ड हैं इसलिए लक्ष्य से विपरीत खण्ड से लक्ष्य तक पहुँचने में चार छलांग यानी दो चाल लगेंगी। उसके बाद सम संख्या में गोटियाँ बची हैं जो सममित ढंग से व्यवस्थित हैं। इसलिए सब गोटियाँ लक्षित खण्ड तक पहुँच जाएँगी।

हमारे पास 4 से विभाज्य n के लिए भी हल है (छात्र की उपपत्ति के अनुरूप)।

जब n सम है लेकिन 4 से विभाज्य नहीं है: यदि n = 6 है तो हम उपरोक्त तर्क का प्रयोग नहीं कर सकते। निश्चित रूप से यह कोई उपपत्ति नहीं है। यह सिद्ध करने के लिए कि n के ऐसे किसी मूल्य के लिए हल नहीं है, हम हर खण्ड के लिए निम्नानुसार एक क्रमांक तय करते हैं। किसी भी खण्ड से शुरू करके हम उन्हें एक के बाद एक 0 और 1 क्रमांक देते हैं। चूँकि n सम है इसलिए यह सम्भव है। इसके अलावा प्रत्येक '1' के पड़ोस में '0' होगा और '0' के पड़ोस में '1' होगा।

अब प्रत्येक खण्ड के लिए हम उसके क्रमांक और उसमें रखी गोटियों की संख्या का गुणनफल निकालते हैं। शुरुआत में चूँकि प्रत्येक खण्ड में एक गोटी है इसलिए s होगा 1+0+1+0+1+0+... = n/2, एक विषम संख्या। प्रत्येक चाल में हम दो छलांगें लेंगे। प्रत्येक चाल में कोई गोटी 0 से 1 में या 1 से 0 में जाएगी। इस प्रकार प्रत्येक चाल s को सम संख्या से विषम संख्या में बदलेगी या इसका उलटा होगा। यानी, यह इसकी द्विभाज्यता को उलटता है।

अत: दो छलांग द्विभाज्यता को बरकरार रखती हैं। चूँकि खण्डों की संख्या 4 से विभाज्य नहीं है इसलिए हमारे पास '0' और '1', दोनों की विषम संख्याएँ होंगी। अत: हम शुरुआत करते हैं s के विषम होने से। द्विभाज्यता अपरिवर्तनीय बनी रहती है। लेकिन समस्या के हल के लिए आवश्यक है कि सभी गोटियाँ किसी साझा खण्ड में आ जाएँ जहाँ s सम हो जाएगा। अत: इसका कोई हल नहीं है।

गतिविधि के निहितार्थ

इस गतिविधि का लक्ष्य 'अवधारणा आधारित पहेली' का उपयोग करके ऐसी चुनौतियाँ तैयार करना था जो बच्चों में औपचारिक प्रमाण के विकास को प्रोत्साहन दें।

कुछ छात्रों ने कोई हल न होने का कारण बताया, इससे हमें यह प्रमाण मिला कि ऐसी गणितीय पहेलियाँ छात्रों को सवाल सुलझाने की गतिविधियों के लिए प्रेरित कर सकती हैं जो गणित की प्रकृति के अनुरूप हों।

एक पहेली की मदद से महत्वपूर्ण गणितीय विचारों को चिह्नित करना और उनके उपयोग से प्रमाण की आवश्यकता को उभारना, रोचक और सूझबूझ प्रदान करने वाला था। हमने देखा कि यह सम्भव है कि अत्यन्त छोटे बच्चों को प्रमाण के विचार से जोड़ा जाए और उन्हें गणित में प्रमाण के केन्द्रीय महत्व से अवगत कराया जाए। सीखने वालों को स्वयं अपने प्रमाण पेश करने के अवसर से, गणित करने की संस्कृति में प्रामाणिक भागीदारी निर्मित करने में मदद मिलेगी। ऐसी परिस्थितियाँ उन्हें गणित में गहनता की महत्ता से अवगत करा सकती हैं।

शिखा टेक्कर: एच.बी.सी.एस.ई., टी.आई.एफ.आर. से डॉक्टरेट अध्ययन कर रही हैं। वे छात्रों के गणितीय विचार प्रक्रिया से जुड़े पहलुओं को लेकर प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के गणित शिक्षकों के साथ काम करती हैं। दिल्ली के हेरिटेज स्कूल में गणित की अध्यापिका रही हैं। वर्तमान में मुम्बई स्थित टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज़ में एम.ए. के विद्यार्थियों को बाल विकास एवं संज्ञान विषय पर आधारित एक पाठ्यक्रम पढ़ाती हैं। वे अनुपात, आरम्भिक बीजगणित और दशमलव भिन्नों को लेकर बच्चों की विचार प्रक्रिया से जुड़े मुद्दों में रुचि रखती हैं।

उनसे shikha@hbcse.tifr.res.in पर सम्पर्क किया जा सकता है।

रोस्सी: वर्तमान में एच.बी.सी.एस.ई., टी.आई.एफ.आर. में शोध छात्र हैं। वे गणित शिक्षा में पीएच.डी. कर रहे हैं। एक व्याख्याता के रूप में काम करने के बाद उन्होंने नारायण हृदयालय अस्पताल में उपकरण सुधारक के रूप में काम किया और बाद में विज्ञान एक्सप्रेस ट्रेन में विज्ञान संचारक के रूप में कार्यरत रहे। उन्होंने अपनी एमटेक की शिक्षा पुणे विश्वविद्यालय से 'मॉडलिंग एंड सिमुलेशन' विषय में पूरी की। उनकी विशेषज्ञता और काम कंप्यूटेशनल जीनोमिक्स में है। उनकी शोध रुचियों में विद्यालयीन गणित शिक्षण और गणितीय पहेलियाँ तथा गेम डिज़ाइन करना है।

उनसे rossi@hbcse.tifr.res.in पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: पूजा सिंह: सक्रिय पत्रकारिता में 12 वर्ष से अधिक का अनुभव। वर्तमान में *शुक्रवार* पाक्षिक में मध्य प्रदेश प्रतिनिधि के रूप में कार्यरत। कविता लेखन और अनुवाद कर्म में सक्रिय।

यह लेख *एट राइट एंगल्स* के वॉल्यूम 3, न. 2, जुलाई 2014 से साभार।

सन्दर्भ: Dmitri Fomin, Sergey Genkin, Ilia Itenberg, Mathematical Circles (Russian experience), Universities Press 2000.

कहानी के आगे

एक कक्षा अनुभव

मौअज़्ज़म अली

इस स्कूल में मेरा लगातार जाना होता है। आज मैं गया तो किसी और काम से था लेकिन स्कूल में एक शिक्षिका के अनुपस्थित होने के कारण और प्रधान-अध्यापक के किसी अन्य काम में व्यस्त होने की वजह से व उनके आग्रह करने पर मुझे कक्षा पाँच में जाने का मौका मिला। आज के लिए मेरे पास किसी भी तरह की कोई कक्षा-योजना नहीं थी। बच्चे मुझे अच्छे से पहचानते थे क्योंकि उनके साथ मैंने पहले भी प्रेमचन्द की एक कहानी 'नादान दोस्त' पर काम किया था। उन्हें अभी भी वह कहानी याद थी। थोड़ी देर उस कहानी पर बात करने के बाद, मैंने उनसे पूछा कि हिन्दी की किताब में अभी किस पाठ पर काम हो रहा है। सभी ने बताया, "एडिसन की कहानी।" वही एडिसन जिसने बल्ब का आविष्कार किया था। इस पाठ में एडिसन के बचपन से जुड़ा एक किस्सा है। बच्चों ने अभी तक इस पाठ को नहीं पढ़ा था, तो पहले इस पाठ को पढ़ा गया। बारी-बारी से बच्चों ने इस पाठ को थोड़ा-थोड़ा करके पढ़ा और उसके बाद बचे हुए पाठ को मैंने बच्चों के सामने ज़ोर-से पढ़ा।

तत्पश्चात इस प्रश्न के साथ बातचीत शुरू हुई कि 'इस पाठ को पढ़ने से क्या समझ में आता है?' इस पर बच्चों के जवाब इस प्रकार रहे–

- हमें सीखने के लिए लगातार मेहनत करनी चाहिए।
- हम जो भी काम करें, हमें अपने ऊपर विश्वास होना चाहिए।
- कभी किसी के आगे झुकना नहीं चाहिए।

सोचते हैं। मैंने पूछा, "लगातार मेहनत करने का क्या मतलब है?"

इस पर सुमित ने, जो बहुत अच्छे से और धाराप्रवाह पढ़ता है, जवाब दिया, "सर, मुझे पढ़ना नहीं आता था। मैंने पढ़ना सीखने के लिए लगातार मेहनत की, और मैं पढ़ना सीख गया।" मन में विचार आया कि चलो, इसी विषय पर बच्चों के साथ ठहरकर बातचीत की जाए और यह

- अपने दिमाग से काम लेना चाहिए।
- नई-नई चीज़ें खोजते रहना चाहिए।
- अपना नाम रोशन करना चाहिए।

पढ़ना सीखने की जुगत

बच्चों द्वारा साझा किए गए विचारों पर एक-एक करके बात करने की बात सूझी यह समझने के लिए कि वे अपने इन विचारों के बारे में क्या समझने की कोशिश की जाए कि इस बच्चे ने पढ़ना सीखने के लिए क्या-क्या प्रयास किए, ताकि अन्य बच्चों को भी जो अभी ठीक से पढ़ नहीं पाते, इससे कुछ फायदा हो। सुमित ने अपना अनुभव साझा किया –

- सर और मैडम से मदद ली।
- रोज़ अखबार पढ़ता था।

- सभी कक्षाओं की किताबों की कहानियाँ पढ़ता था।
- रास्ते में दिखने वाले साइन-बोर्ड पढ़ता था।

इससे ये बात साफ तौर से निकलकर आती है कि जब बच्चे में पढ़ने की इच्छा जागृत हो जाए तो वह इसमें प्रगति के अपने अवसर खोज ही लेता है। साथ ही, इस बात को भी समझने की ज़रूरत है कि किसी बच्चे में पढ़ने की इच्छा जागृत कैसे होती है। बहुत बार ऐसे अनुभव भी हुए हैं कि कक्षा सात-आठ के बच्चे भी ठीक से पढ़ नहीं पाते। जो बच्चे बड़ी कक्षाओं में आकर भी नहीं पढ़ पाते, उसके क्या कारण होते होंगे? सुमित ने अपने आसपास पढ़ने की जितनी सामग्री उपलब्ध थी, उन्हीं को गिनाया, उसने पाठ्यपुस्तकों के अलावा अन्य किताबों का नाम नहीं लिया। इसके मायने हैं कि उसे स्कूल या घर में बाल-साहित्य पढ़ने को नहीं मिला। अगर सुमित को पाठ्यपुस्तकों के अलावा अन्य किताबें भी पढ़ने के लिए दी जातीं तो शायद उसके पढ़ने का कौशल और भी बेहतर रूप से विकसित होता। साथ ही, वह बेहतर बाल-साहित्य से परिचित भी होता, क्योंकि किताबें हमें केवल अपने जीवन से ही नहीं जोड़तीं बल्कि अन्य परिवेशों और सन्दर्भों से भी हमारी पहचान कराती हैं।

"कक्षा में सब बेहतर रूप से पढ़ पाएँ, इसके लिए क्या-क्या उपाय किए जा सकते हैं?" इस प्रश्न पर बच्चों ने कहा –

- जिन बच्चों को पढ़ना आता है, उन्हें अन्य बच्चों को पढ़ने में मदद करनी चाहिए।
- सबको मिलकर पढ़ना चाहिए या छोटे-छोटे समूह में पढ़ना चाहिए।
- अकेले बैठकर पढ़ने की कोशिश करनी चाहिए।
- जितने भी विषयों की किताबें या पढ़ने की चीज़ हाथ लगे, पढ़नी चाहिए।
- सामान लाने या रखने के लिफाफे आदि को भी पढ़ सकते हैं।
- हमारे आसपास बहुत सारे बोर्ड और इश्तेहार लगे होते हैं, उनको पढ़ना चाहिए।
- अखबार पढ़ना चाहिए।
- अपने परिवार और शिक्षकों की मदद लेनी चाहिए।

सीखने के अनुभव

बात को आगे बढ़ाते हुए बच्चों से पूछा, "हमें सीखने या कुछ हासिल करने के लिए लगातार मेहनत करनी चाहिए, ऐसा आपने कहा। क्या आपके पास भी सुमित की तरह ऐसा कोई अनुभव है, जहाँ किसी चीज़ को सीखने के लिए आपने मेहनत की हो और सीख पाए हों?" इस पर बच्चों ने अपने अनुभव रखे –

- मैंने ड्रॉइंग बनाना सीखने के लिए बहुत मेहनत की। अब मैं बहुत अच्छी ड्रॉइंग बना लेती हूँ।

- मुझे गणित में दिक्कत होती थी लेकिन मैंने बहुत मेहनत की और सीख गया। अब मैं आराम-से भाग का सवाल हल कर लेता हूँ। इसके लिए मैंने ग्यारह तक पहाड़े याद किए। अब मैं ग्यारह के पहाड़े तक का कोई भी भाग का सवाल हल कर सकता हूँ।
- मैंने खाना बनाना सीखा।

खाना बनाना सीखने की बात पर आधे से अधिक बच्चों ने अपना हाथ उठाकर बताया कि उनको भी खाना बनाना आता है। अब बातचीत की गाड़ी उसी दिशा में चल पड़ी कि खाना बनाना सीखने के लिए किसने क्या और कितनी मेहनत की, और क्या-क्या बनाना सीखा। सभी सामने आ-आकर अपनी खाना बनाना सीखने की यात्रा और कोई विशेष खाना बनाने की विधि, सबके साथ साझा करने लगे। जैसे – मुर्गी और मच्छी पकाने की अलग-अलग विधियाँ, चावल, आलू और चाऊमिन बनाने की विधियाँ आदि। यह देखना अच्छा लगा कि इसमें लड़के और लड़कियों की भागीदारी बराबर ही थी।

एक ने अपनी साइकिल चलाने की कहानी सबको सुनाई, तो दूसरे ने कागज़ का रॉकेट बनाना सिखाया। किसी ने स्वयं मिट्टी के बर्तन बनाना सीखने और उन्हें बाज़ार में बेचने का किस्सा सबके सामने रखा। वहीं कोई अपनी साइकिल में लाइट लगाने की पूरी जुगत और विधि बताने लगा कि कैसे उसने बैटरी के साथ, तार की मदद से, बल्ब को जोड़कर अपनी साइकिल के लिए रोशनी की व्यवस्था की, ताकि वह रात के अँधेरे में भी साइकिल चला सके।

केवल पाँच बच्चे ही ऐसे थे जिन्होंने कई बार अनुरोध करने पर भी अपनी तरफ से कोई बात रखने की कोशिश नहीं की थी। फिर इन सभी बच्चों को सामने बुलाया गया तो इन बच्चों ने भी, छोटे में ही सही, अपने अनुभवों को रखने का प्रयास किया और लगभग उसी तरह के अनुभव साझा किए। इस प्रकार सभी को अपने अनुभव साझा करने के मौके दिए गए। कुछ बच्चों ने तो बहुत सारे अनुभव साझा किए। अरुण के पास तो हर विषय पर अपना अनुभव साझा करने के लिए कुछ-न-कुछ था।

आगे की सम्भावित योजना

बच्चों ने जो विचार साझा किए थे, उन पर बात की जा सकती है कि उनके दिमाग में ये बातें या वाक्य कैसे आए। जैसे –

- हम जो भी काम करें, हमें अपने ऊपर विश्वास होना चाहिए।
- कभी किसी के आगे झुकना नहीं चाहिए।
- अपने दिमाग से काम लेना चाहिए।
- नई-नई चीज़ें खोजते रहना चाहिए।
- अपना नाम रोशन करना चाहिए।

वे इन बातों के बारे में क्या सोचते हैं? बच्चों के अनुसार, इन वाक्यों के व्यक्तिगत और सामाजिक सन्दर्भ क्या हैं? जो वाक्य उन्होंने बोले, क्या वे इनको समझते भी हैं? यदि हाँ, तो कैसे समझते हैं? फिर ऐसे और भी कई वाक्यों और मुहावरों पर बात की जा सकती है, और साथ ही, इन्हें पढ़ने-लिखने के साथ जोड़ा जा सकता है।

कुछ अन्य बिन्दु और बातें

- बच्चों की बताई बातों, खाने की विधियों और अनुभवों को, उन्हीं के द्वारा लिखवाया जा सकता है।
- उन पर चार्ट बनवाकर कमरे में चस्पा किया जा सकता है।
- बच्चों की बातों और अनुभवों पर कहानियाँ या कविताएँ रची जा सकती हैं।
- कहानी और कविता के अनुसार चित्र या मुख्यपृष्ठ भी बनवाए जा सकते हैं।
- बच्चों का अपना कहानियों और कविताओं का संग्रह निर्मित किया जा सकता है।
- चित्रों द्वारा स्टोरी बोर्ड बनवाकर दीवार पर टाँगा जा सकता है ताकि बच्चे रोज़ाना अपने काम को देख पाएँ।

जब बच्चों को अपना किया काम कक्षा में लगा दिखाई देता है, तो इससे उनके सीखने के उत्साह में वृद्धि होती है और पढ़ना-लिखना

सीखने में भी मदद मिलती है। इससे बच्चों को वह कक्षा अपनी लगती है, जहाँ वे कुछ भी रच सकते हैं। जब बच्चे कक्षा में लगातार कुछ नया रचते हैं तो इस प्रक्रिया में दरअसल, वे अपने व्यक्तित्व में कुछ नया जोड़ते हुए, स्वयं की समझ, विचार, कल्पनाओं, सपनों और नज़रियों को रच रहे होते हैं। एक अच्छी कक्षा में रचने की प्रक्रिया में लगातार फेरबदल झाड़कर नई कल्पनाओं को रचने, अपनी मान्यताओं की पड़िलंग करने, अपने नज़रियों की खूँटी पर नए-नए नज़रियों को टाँगने और समय-समय पर अदल-बदल करने का स्थान भी होना चाहिए।

निष्कर्ष

इस दिन की पूरी प्रक्रिया को देखने से यह बात साफ तौर से

करने, सोचने और परिवर्तन करने या जोड़ने-तोड़ने के लिए भी जगह होती है, क्योंकि वही रचनात्मकता है।

बच्चों को अपने सोचने पर सोच-विचार करने की जगह भी होनी चाहिए। अपने विचारों पर पुन: विचार करने, अपनी पिछली कल्पनाओं को

दिखाई देती है कि –

- अगर बच्चों को बातचीत के मौके दिए जाएँ तो वे बहुत उत्सुकता और स्पष्टता के साथ अपनी बात साझा करते हैं और दूसरों की बात सुनते भी हैं।
- इस बात पर खास तौर से ध्यान

देने की ज़रूरत होती है कि सभी को अपनी बात रखने और दूसरों की बात सुनकर प्रतिक्रिया देने के अवसर दिए जाएँ।

- जब बच्चे अपनी बातों को साझा करते हैं तो इसमें उनको खुद-ब-खुद मौखिक अभिव्यक्ति के अवसर मिलते हैं, जिससे उन्हें उनकी भाषा के विकास में मदद मिलती है।

  इस बात पर भी खास तौर से ध्यान देने की ज़रूरत है कि जब कोई बात शुरू हो तो उस पर ठहरकर बात करनी चाहिए, फिर उससे जोड़ते हुए दूसरे विषय को पकड़ना चाहिए।
- बातचीत के मायने बच्चों को कोई बात बताना या जानकारी देना कतई नहीं है, बल्कि बातों का एक ऐसा सिलसिला शुरू करना है जिसमें बच्चे अपने विचारों, अनुभवों, सन्दर्भों, कल्पनाओं, अहसासों, ख्वाहिशों, डरों, खुशियों, असन्तुष्टियों, शरारतों आदि को रख सकें।
- किसी भी बात का यूँ ही हो जाना और फिर खत्म हो जाना, बातचीत के द्वारा सीखने के उद्देश्यों को पूरा नहीं करता।

मौअज़्ज़म अली: 1993 से थिएटर, ड्रामा और कला के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। फिलहाल, 2012 से अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, रुद्रपुर, ऊधमसिंह नगर, उत्तराखण्ड में स्रोत व्यक्ति के रूप में कार्यरत हैं।

सभी चित्र: तविशा सिंह: भोपाल निवासी तविशा हमेशा स्केचिंग या किताब पढ़ते हुए मिलती हैं। आप इलस्ट्रेटर-चित्रकार हैं। कहानियों के प्रति उनका बढ़ता लगाव, उन्हें चित्रों के साथ स्टोरी-टेलिंग करने की कला की ओर ले गया।

मैं महापल्ली में रहता हूँ...

मीनू पालीवाल

कक्षा-1 के बच्चे ने अपना परिचय लिखने का प्रयास किया। बच्चे ने यह परिचय अक्टूबर में लिखा था और स्कूल जुलाई से खुल जाते हैं। मतलब, लगभग 3 से 4 महीने में यह बच्चा इतना लिखना सीख गया है।

यदि बड़ों की नज़र से इस लेख में गलतियाँ खोजने की कोशिश करेंगे तो बहुत-सी गलतियाँ नज़र आने लगेंगी क्योंकि कॉपी चेक करना या आकलन करने का मतलब अक्सर गलतियाँ सुधरवाना ही समझा जाता है। परन्तु थोड़ा उदार और सृजनात्मक नज़र से इसका आकलन किया जाए तो कुछ और ही दिखेगा।

आइए, हम इसका सही मायनों में आकलन करने की कोशिश करते हैं।

इस लेखन (चित्र-1) को देखकर, बच्चा क्या-क्या जानता है, इस बारे में हम निम्न बातें कह सकते हैं:

- बच्चा इन अक्षरों म, ह, प, ल, क, क्ष, ड, झ, ख, न को लिखना जानता है।
- कुछ मात्राएँ जानता है जैसे आ, ए, ऐ, इ, उ की मात्राएँ।
- शब्दों के बीच में थोड़ी जगह छोड़ना जानता है।
- शब्दों के ऊपर एक लाइन खींचनी होती है, यह भी जानता है।
- बच्चे का 'रवेलना' में 'ख' लिखने का तरीका यह बताता है कि शिक्षक का लिखा हुआ, उसके लिए कितना महत्वपूर्ण है।
- वह यह भी जानता है कि लेखन दाएँ से बाएँ और ऊपर से नीचे किया जाता है।

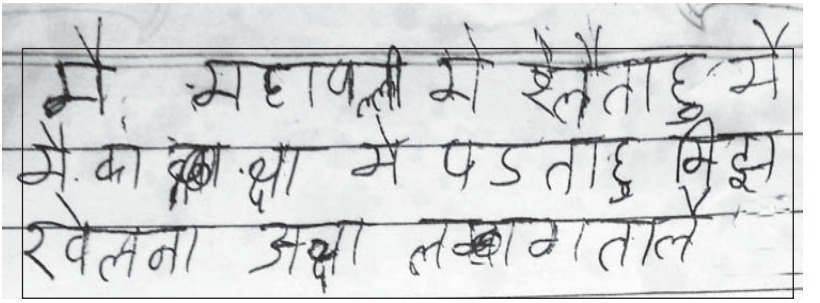

चित्र-1

आकलन का एक उद्देश्य यह जानना भी होता है कि बच्चा सीखने की प्रक्रिया में कहाँ तक पहुँचा है। आइए, इसे समझते हैं।

- बच्चे ने महापल्ली (जो आम मान्यता के अनुसार एक कठिन शब्द है क्योंकि यह शब्द न केवल 4 अक्षरों से मिलकर बना है बल्कि उसमें आधा अक्षर भी है) सही लिखा।
- बच्चे ने 'कक्षा' शब्द में 'क्ष' अक्षर इस्तेमाल किया है। यह अक्षर कम ही शब्दों में देखने को मिलता है और इसे एक कठिन अक्षर समझा जाता है।
- 'कक्षा' और 'अच्छा' शब्द बोलने में ध्वनि में कुछ समानता महसूस होती है। कक्षा-1 का बच्चा यह महसूस कर पा रहा है और इसलिए उसने 'अच्छा' को 'अक्षा' लिखा है, जो सराहनीय है। इससे यह पता चलता है कि बच्चा अपने सीखे हुए को कहीं और लागू करने की क्षमता विकसित कर रहा है।
- 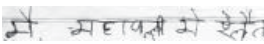 इस वाक्य में बच्चा 'ए' और 'ऐ' की मात्रा का सही उपयोग कर पाया है।
- "मैं महापल्ली में " और "खेलना अच्छा 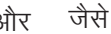", इनमें 'ह' अक्षर की बजाय 'ल' अक्षर का इस्तेमाल किया है। इससे ऐसा लग सकता है कि बच्चा 'ह' अक्षर नहीं जानता, परन्तु उसने अपने लेखन में 'ह' ('हु' में) और 'ल' ('महापल्ली') का सही इस्तेमाल किया है। इसका मतलब है कि जब बच्चे से अपना लिखा पढ़कर, उसे ठीक करने को कहा जाएगा तो इस बात की बहुत सम्भावना है कि बच्चा अपनी गलती खुद ही सुधार ले।
- इसमें बच्चे ने 'मुझे' की बजाय 'मिझ' लिखा है। इसका मतलब यह नहीं है कि बच्चा 'ए' की मात्रा और 'उ' की मात्रा का उपयोग नहीं जानता। उसने अपने लेखन में 'इ' और 'उ' की मात्रा का उपयोग किया है।
- इसी तरह 'पढ़ता' की जगह 'पडता' लिखा है। 'ड' और 'ढ़' की ध्वनि में अन्तर कम है, इसलिए शुरुआत में यह गलती स्वाभाविक ही है।

सुधार कहाँ, क्यों और कैसे करवाएँ

1. बच्चे को स्वयं अपना लिखा पढ़ने और उसमें सुधार करने को कहा जाना चाहिए।

2. आकलन करने वाले को यह निश्चित करना चाहिए कि बच्चे ने असल में गलती की भी है या नहीं। जैसे बच्चे ने 'मुझे' की बजाय 'मिझ' लिखा है, यह गलती शायद क्षणिक है क्योंकि उसने अपने लेखन में 'इ' और 'उ' की मात्रा का कई जगह सही उपयोग किया है।

3. हमें यह बात भी समझनी चाहिए कि हम सारी त्रुटियों को सुधारने की

कोशिश तुरन्त ही न करने लग जाएँ। इससे बच्चा लिखने से कतराने लगेगा।

4. हम गलतियों का पैटर्न देखकर, उनको सुधारने का तरीका ढूँढ़ें।

इस लेखन में केवल एक ही जगह सुधार करवाने की ज़रूरत दिख रही है। तीन जगह एक ही किस्म की गलती है, यहाँ हम एक पैटर्न देख रहे हैं।

रहताहूँ, पढ़ताहूँ, लगताहै – इनमें एक पैटर्न बनता है। बच्चा दो शब्दों को मिला रहा है, वो भी वाक्य के अन्त के दो शब्दों को। इसे सुधारने के वैकल्पिक तरीके हमें सोचने होंगे।

कैसे सुधारी जाएँ गलतियाँ?

बच्चे से सीधे-सीधे यह कहना कि “दो शब्दों को एक साथ क्यों लिखा है, इन्हें अलग-अलग करके लिखो,” शायद गलत होगा क्योंकि इसमें बच्चे के लिए सोचने की जगह नहीं है। उसे सिर्फ हुक्म की तामील करना है। यहाँ यह प्रश्न वाजिब है कि क्या सीधे-सीधे बता देने वाले तरीके में शिक्षक के स्वयं के सोचने की गुंजाइश है? शायद नहीं। सोचने की जगह तब होगी जब शिक्षक इन प्रश्नों पर विचार करे-

- बच्चा यह गलती क्यों कर रहा है?
- क्या यह गलती उसके पिछले कक्षा लेखन में भी नज़र आती है?

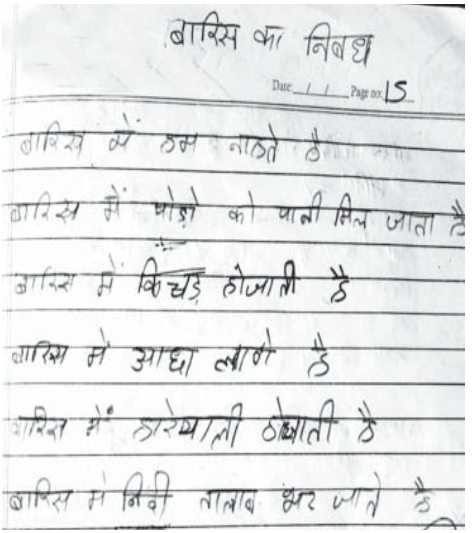

चित्र-2

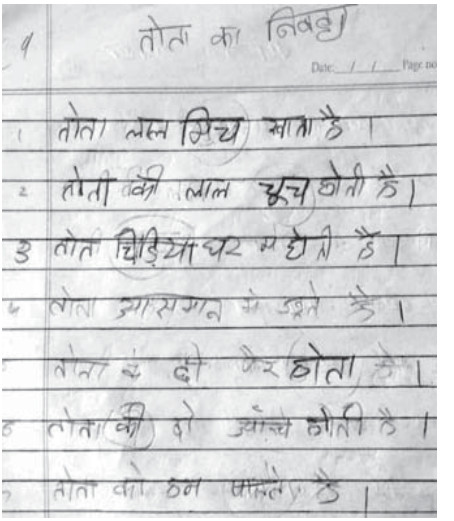

चित्र-3

- सीधे-सीधे यह कहने के कि 'पढ़ताहूँ' में 'पढ़ता' और 'हूँ' के बीच जगह छोड़नी होती है, क्या इसके अलावा भी कोई तरीका हो सकता है?
- क्या हम उसे पेन से चिह्नित करते हुए, तीनों जगह अलग-अलग बताएँगे कि यही सुधार कुल तीन जगह किया जाना है? इस तरह तो हमें हर बार, हर जगह उसे यह बताना पड़ेगा।

एक सुझाव हो सकता है कि पूरी कक्षा के साथ 'एक वाक्य में कितने शब्द हैं' बताने की गतिविधि करवाई जाए। उसमें ऐसे वाक्य लिए जाएँ जिनका अन्त एक ही अक्षर से होता हो। उदाहरण के लिए, 'मुझे चॉकलेट अच्छी लगती है। मैंने तुम्हारी कॉपी ली है। मैं गाड़ी पर बैठता हूँ।' जब बच्चे बताएँगे कि इन वाक्यों में कितने शब्द हैं तो सम्भव है कि यह बच्चा अपनी गलती खुद ही सुधार ले।

क्या सच में बच्चे अपनी गलती दोबारा लिखने में सुधार लेंगे?

मैंने आपको बच्चों की गलतियों को तुरन्त न सुधारने के लिए कुछ तर्क दिए हैं, जैसे 'मिझ' शब्द। तर्क यह है कि बच्चा 'ए' और 'इ' की मात्रा जानता है। यह कक्षा में मैंने करके भी देखा है। कक्षा-3 की एक बच्ची ने 'बारिश' और 'तोता' विषय पर कुछ लाइनें लिखी हैं (देखें चित्र 2 व 3)। उसने दो शब्द क्रमशः 'नदी' को 'निदी' और 'चोंच' को 'चुच' लिखा है। ये लाइनें देखकर मैं जान गई कि यह बच्ची इन शब्दों को लिखना जानती है। मैंने बच्ची से 'तोते की चोंच लाल होती है' और 'बारिश में नदी-तालाब भर जाते हैं' कॉपी के अन्तिम पन्ने पर फिर से लिखने के लिए कहा। चित्र-4 में देखा जा सकता है कि इस बार बच्ची ने सही मात्रा का उपयोग कर लिया है। हाँ, 'चोंच' में बिन्दी लगती है, यह किसी तरह से सिखाना होगा।

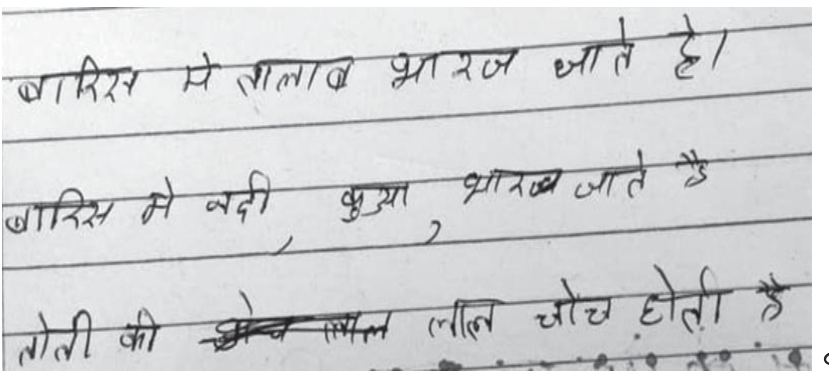

चित्र-4

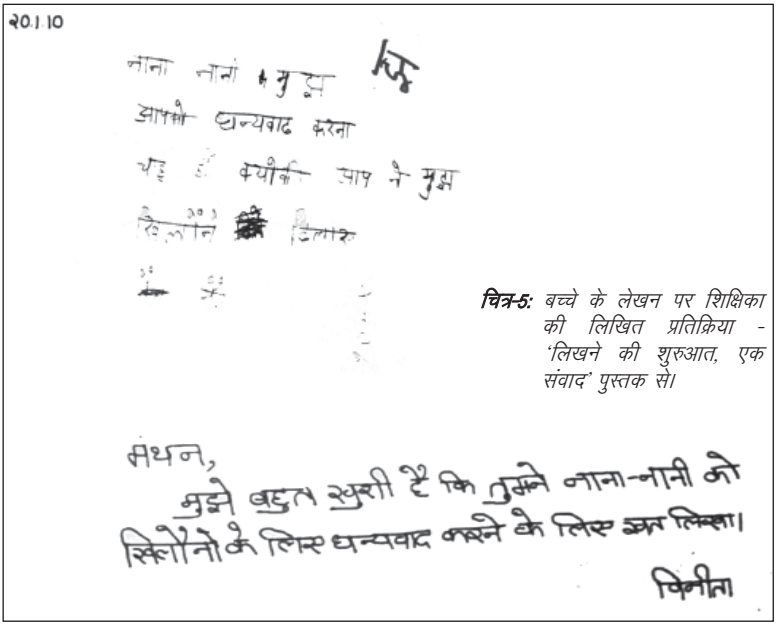

चित्र-5: *बच्चे के लेखन पर शिक्षिका की लिखित प्रतिक्रिया - 'लिखने की शुरुआत, एक संवाद' पुस्तक से।*

लेखन बेहतर करने के कुछ सुझाव

मौलिक लेखन के अवसर देना

यहाँ हमने कक्षा-1 के बच्चे के लेखन का विश्लेषण किया है। कक्षा-1 का बच्चा अपनी बात लिखकर हम तक पहुँचा पाया है, यह एक बड़ी उपलब्धि है। गलतियाँ सुधरवाने का सबसे अच्छा तरीका एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित किताब *लिखने की शुरुआत* सुझाती है। उसमें कहा गया है कि बच्चों को लिखने के ज़्यादा-से-ज़्यादा अवसर दिए जाएँ। शिक्षक बच्चे का लिखा चेक करते वक्त, मन में आए खयालों को लिखते जाएँ। जैसे यदि किसी बच्चे ने अपने पालतू पशु के बारे में कुछ लिखा है तो शिक्षक यह टिप्पणी लिख सकते हैं कि बचपन में उनके पास भी कोई पालतू पशु था और वे किस तरह उसके साथ समय बिताते थे। शिक्षक कोई प्रश्न भी लिख सकते हैं जैसे - तुमने लिखा कि तुम्हारा पालतू कुत्ता गुम हो गया था फिर वो किस तरह मिला, कहाँ मिला। यह तरीका अपनाने से बच्चे लेखन को एक संवाद के तौर पर देख पाएँगे और उत्तर देने के लिए उन्हें लिखने की स्वाभाविक ज़रूरत महसूस होगी जिससे लेखन के अभ्यास का मौका मिलेगा।

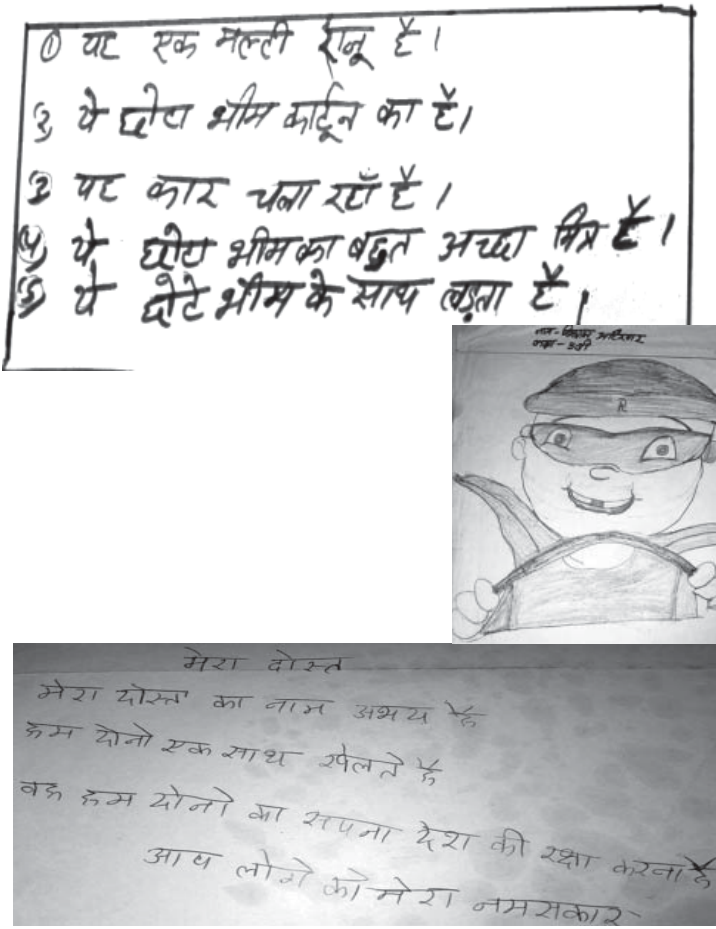

चित्र-6: *एक बच्चे ने अपने पसन्द के कार्टून पर लिखने की कोशिश की है तो दूसरे ने 'मेरा दोस्त' विषय पर लिखने की। इस तरह के लेखन के अवसर बच्चों को और भी ज़्यादा लिखने को प्रेरित कर सकते हैं?*

बाल साहित्य पढ़ने के अवसर (विज़ुअल मेमोरी का विकास)

बच्चों को पढ़ने के लिए ढेरों किताबें उपलब्ध करवाई जाएँ। अक्सर यह समझा जाता है कि जब पढ़ना ही नहीं आता तो कक्षा पहली और दूसरी के बच्चों को किताबें क्यों दी जाएँ। एन.सी.ई.आर.टी. ने कक्षा पहली

बरखा शृंखला की भूमिका

बरखा क्रमिक पुस्तकमाला पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों के लिए है। इसका उद्देश्य बच्चों को 'समझ के साथ' स्वयं पढ़ने के मौके देना है। *बरखा* की कहानियाँ चार स्तरों और पाँच कथावस्तुओं में विस्तारित हैं। *बरखा* बच्चों को स्वयं की खुशी के लिए पढ़ने और स्थाई पाठक बनने में मदद करेगी। बच्चों को रोज़मर्रा की छोटी-छोटी घटनाएँ कहानियों जैसी रोचक लगती हैं, इसलिए *बरखा* की सभी कहानियाँ दैनिक जीवन के अनुभवों पर आधारित हैं। इस पुस्तकमाला का उद्देश्य यह भी है कि छोटे बच्चों को पढ़ने के लिए प्रचुर मात्रा में किताबें मिलें। *बरखा* से पढ़ना सीखने और स्थाई पाठक बनने के साथ-साथ बच्चों को पाठ्यचर्या के हरेक क्षेत्र में संज्ञानात्मक लाभ मिलेगा। शिक्षक *बरखा* की किताबों को हमेशा कक्षा में ऐसे स्थान पर रखें जहाँ से बच्चे आसानी-से उन्हें उठा सकें।

- *बरखा* शृंखला से उद्धरित

और दूसरी के लिए बरखा किताबों की शृंखला बनाई है। इन किताबों को जब बच्चे चित्रों और शिक्षक की सहायता से पढ़ेंगे तो अचेतन स्तर पर बच्चे शब्दों, अक्षरों और मात्राओं की बनावट और इस्तेमाल से परिचित हो रहे होंगे। ज़्यादा पढ़ने से बच्चों की विज़ुअल मेमोरी का विकास होगा। विज़ुअल मेमोरी से मेरा आशय है कि जब आप किसी शब्द को देखकर ही बता देते हैं कि यह गलत लिखा है। कई बार आपको खुद भी पता नहीं होता कि इसमें गड़बड़ कहाँ है पर जब आप उस शब्द को दो-तीन तरह से लिखकर देखते हैं तो आप बता सकते हैं कि उनमें से सही कौन-सा है। कुछ लोग इसे अँग्रेज़ी के सन्दर्भ में ज़्यादा बेहतर तरह से समझ पाएँगे। बच्चे जितना ज़्यादा पढ़ेंगे, जितनी ज़्यादा बातें करेंगे, जितना ज़्यादा लिखेंगे – उनका लेखन उतना ही बेहतर होता जाएगा। ज़रा सोचिए, पहली कक्षा के बच्चे ने 'महापल्ली' और 'कक्षा' जैसे शब्द सही-सही कैसे लिख लिए!

मीनू पालीवाल: अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, सागर, म.प्र. में कार्यरत। इससे पहले आई.सी.आई.सी.आई. बैंक में काम किया जहाँ समाज और लोगों के कामकाजी जीवन से सम्बन्धित कई सवाल सामने आते थे। उन्हीं सवालों के जवाब ढूँढ़ने की प्रक्रिया में शिक्षा जगत से जुड़ने की प्रेरणा मिली। प्राथमिक कक्षा के बच्चों के साथ काम करने में खास रुचि।

सभी फोटो: मीनू पालीवाल।

इसी विषय पर मीनू पालीवाल का एक लेख *पाठशाला* पत्रिका के अंक-10, दिसम्बर 2021 में प्रकाशित हो चुका है।

Language and Language Teaching (LLT)
A peer-reviewed journal

LLT focuses on the theory and practice of language learning and teaching, particularly on the learner, teacher, materials, teacher training, learning environment, evaluation, or policy issues in multilingual settings.

Published biannually in English in January and July by Aakar Books International, Delhi 110091

ISSN:2277-307X

Papers are invited for the forthcoming issues of LLT (LLT 21 onwards). Papers in Hindi are also welcome. The references must be complete in ALL respects, and must follow the APA 7 style sheet. All papers must include an abstract (100-150 words) and a set of key words (maximum 6 keywords). Papers MUST be written in a style that is easily accessible to school teachers, who are the primary target audience of this periodical. The article must be original and should not have been submitted for publication anywhere else. A statement to this effect must be sent along with the article.

Word limit:

Article: 2000-2200 (it could be extended to 3000 words if it has some theoretical significance);

Interview: 2500-3000; Landmark: 2500-3000

Book Review: 1000-1500; Classroom Activity: 750; Report: 1000

The bio-note should not exceed 30 words.

Papers must be submitted as a word document in MS Office 7. For images, please send jpeg files.

Last date for the submission of articles:

January Issue: August 15; July Issue: February 15

Articles may be submitted online simultaneously to the following email IDs:

agniirk@yahoo.com; amrit.l.khanna@gmail.com; jourllt@gmail.com

Subscription

India: Individual Rs. 400 (for a single issue), Rs. 700 (for one year) and Rs. 3,000 (for five years)

Overseas: Individual US $75 (for a single issue), US $130 (for one year) and US $550 (for five years)

Email id: jourllt@gmail.com Website: www.llt.org.in

मूँ तो चल्याँ टीको लगवावाँ, तूँ भी चाल

मोहम्मद उमर

हमारी गाड़ी मुख्य सड़क को छोड़कर, भीतर जंगल की ओर जा रही एक दूसरी सड़क पर मुड़ गई। कुछ दूर चलने पर हम एक चढ़ाई चढ़ने लगे। यहाँ से गाँव के अन्तिम छोर पर बसे घर दिख रहे थे। एक पहाड़ी से मुड़कर, अब हमारी गाड़ी ढलवाँ सड़क पर तेज़ी-से लुढ़कती जा रही थी। अगल-बगल सिर्फ और सिर्फ हरे-भरे जंगल नज़र आ रहे थे। इस ढलान के बाद एक और खड़ी चढ़ाई थी, इतनी ज़्यादा कि अब हम दूर के पहाड़ों की चोटियों को साफ-साफ देख सकते थे। आज हम राजसमन्द ज़िले के केलवाड़ा ब्लॉक में स्थित कांकरवा पंचायत में आने वाले एक गाँव में जा रहे थे।

कुम्भलगढ़ का किला जो अपने असीम विस्तार के साथ मीलों लम्बी दीवार के लिए जाना जाता है, इसी क्षेत्र में स्थित है। यह किला अपने आप में राजपूताने की समृद्धि और आन-बान के लिए प्रसिद्ध है। इतिहास की इस गौरवशाली धरोहर से महज़ कुछ किलोमीटर की दूरी पर स्थित इस गाँव में आकर हम वंचना को उसके विभिन्न अर्थों में, खुद की आँखों से देख पा रहे थे। सिर्फ घर ही

नहीं, बल्कि लोगों की काया भी काफी कुछ टूटी-बिखरी-सी थी यहाँ।

शिक्षा की स्थिति

हमारे साथ गाड़ी में पंचायत के उपस्वास्थ्य केन्द्र पर कार्यरत एएनएम पुष्पाजी, आंगनवाड़ी कार्यकर्ता नवली देवी, आशा कार्यकर्ता अणछी बाई और मेरी सहकर्मी मोनिका भी बैठी थीं। नवली देवी ने बताया कि यहाँ पर मुख्यतः भील आदिवासी बसे हुए हैं। तकरीबन 25-30 परिवार नीचे बसे हैं, और इतने ही घर बाएँ हाथ पर स्थित पहाड़ के ऊपर बसे हैं। सरकारी स्कूल इस ढाणी की शुरुआत में ही पीछे रह गया था। कोरोना से फैल रही बीमारी का आतंक इतना ज़्यादा है कि तकरीबन दो साल होने को हैं, और स्कूल नहीं खुल रहे हैं। हालाँकि, सभी शिक्षकों को रोज़ स्कूल आना होता है। सरकार मोबाइल फोन पर स्माइल कार्यक्रम - घर पर सीखो - चला रही है, लेकिन इस बियाबान में कहाँ मोबाइल और कहाँ इंटरनेट। बच्चों की पढ़ाई-लिखाई तो अब भगवान भरोसे ही है।

बच्चे जामुन के पेड़ों या फिर अपनी भेड़-बकरियों के साथ ही समय गुज़ार रहे हैं। कुछ इने-गिने शिक्षक ही ऐसे हैं, जो गाँव और ढाणी में घूमकर बच्चों को कुछ पढ़ने-लिखने का काम देकर आ जाते हैं। बच्चे अपना काम पूरा कर, स्कूल जाकर जाँच करा लेते हैं, और नया काम लेकर आ जाते हैं।

अणछी बाई के शब्दों में कहें तो, "दो-दो वर वेई गिया, कोरोणा ऊँ इसकुलाँ बन्द हैं, छोरा-टाबरा री भणाई रो तो हेपुसों सतियानाश वेई गियों है, अबे तो जो आवतों वोई भूल्या परा।"

इस भील ढाणी में ज़्यादातर बच्चे पहली या दूसरी पीढ़ी के हैं, जो स्कूल का मुँह देख रहे हैं। किसी भी समाज में शिक्षा का अभाव, तमाम अन्धविश्वासों और भ्रान्तियों को फैलने में और तेज़ हवा देता है। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता नवली देवी ने कहा, "अणि पाड़ा रा मनखाँ मे हाल घणों भेम है, ज्यू कोरोणा ऊँ वंचवा रे वातरे टीकों नी लगाई रिया हैं। डोकरा-बूढ़ा री की वात करां, अटे तो जवान आदमी भी टीका नी लगाई रिया हैं।"

मुहिम की शुरुआत

हमारी गाड़ी सड़क के एक किनारे रुकी। हम सभी गाड़ी से उतरकर, अपने हाथों में मेवाड़ी भाषा में लिखी नारे वाली तख्तियाँ सहेजने लगे - 'मूँ तो चल्याँ टीको लगवावाँ, तू भी चाल'। यह नारा मेरे साथी विष्णु भाई ने बनाया था। मुझे यह नारा बाकी के सभी नारों से ज़्यादा पसन्द है। मैंने अखबार से बनी टोपियों में से, यह नारा लिखी टोपी उठाकर अपने सिर पर रख ली। बाकी लोग भी अपने-अपने सिर पर टोपियाँ लगाने लगे। नारा लिखते समय ही दफ्तर में

साथियों के बीच यह बात आई थी कि गाँव में जो लोग पढ़े-लिखे नहीं हैं, वे भला इन नारों को कैसे पढ़ सकेंगे। इस बात का खयाल रखते हुए, तख्तियों पर साफ नज़र आने वाले चित्र भी बना लिए गए थे जिसमें कोरोना से बचाव और टीका लगवाने के बारे में जानकारी देखी जा सकती थी।

अपने हाथों में पोस्टर, बैनर और तख्तियाँ लेकर हम लोग जैसे ही गाँव में दाखिल हुए, तो लोग अपने-अपने घरों के दरवाज़े बन्द करने लगे। एक घर के बाहर बैठी कुछ औरतें हरी धनिया की गड्डियाँ बना रही थीं। हम लोगों को देखते ही वे अपनी धनिया, टोकरी और बर्तन-भांडे छोड़कर, ऊपर पहाड़ों पर स्थित जंगल में भाग गईं। हम उन्हें रोकते ही रह गए लेकिन वे जंगल में ओझल हो गईं।

गाँववासियों से बातचीत की कोशिश

एक और घर से भड़ाक-से दरवाज़ा बन्द कर सांकल चढ़ाने की तेज़ आवाज़ आई। मोनिका और नवली देवी ने अनेक बार दरवाज़ा खटखटाया, लेकिन कोई भी निकलकर बाहर नहीं आया। इस घर की एक बूढ़ी महिला, उसकी बहू और तीन बच्चे, छत की मुण्डेर से झाँककर हम सभी को देख रहे थे।

नवली देवी आंगनवाड़ी कार्यकर्ता होने के नाते इस ढाणी में अक्सर आती हैं और यहाँ पर बहुत-से लोगों को जानती भी हैं। लेकिन, आज तो उनके बुलाने पर भी लोग पास नहीं आ रहे थे। उन्होंने कुछ महिलाओं से बात की, फिर हमें बताया कि ये लोग डर रहे हैं। उन्हें लग रहा है कि हम सभी लोग इन्हें टीका लगा देंगे, इसीलिए लोग सामने नहीं आ रहे हैं। एक महिला ने अपने घर का दरवाज़ा

बन्द कर लिया और पीछे के आँगन में बँधी गाय को चारा देने लगी। मेरी सहकर्मी मोनिका और नवली देवी ने आँगन की चारदीवारी के बाहर से उन्हें खूब समझाया कि हम लोग टीका लगाने वाले नहीं हैं। हम तो सिर्फ बात करने आए हैं। फिर भी वे नहीं मान रही थीं।

गाँव में कोई भी हम लोगों के पास आने या हमसे बात करने को तैयार नहीं था। इसी दौरान गली में एक लड़का दिखाई दिया। उसने सरकारी स्कूल की ड्रेस पहन रखी थी। वह भी तेज़ कदमों से चलता हुआ, गली पार कर, खेतों की तरफ निकल भागने की फिराक में था। मैंने उसे रोका तो वह रुक गया। तभी खिड़की से झाँकती उसकी माँ ने तेज़ आवाज़ में कहा, "छोरा, नाई जा रे, कोई टीकों लगावा आई रिया हैं।" मैंने उसकी माँ को समझाते हुए कहा, "घबराओ मत, हम लोग टीका लगाने नहीं आए हैं। देखो, हमारे हाथ में कुछ भी नहीं है। हम तो बस आपसे बात करना चाहते हैं।" लेकिन, वे हम पर यकीन नहीं कर रही थीं। उस लड़के ने बताया कि उसका नाम चम्पालाल है। वह ढाणी की शुरुआत में ही स्थित उच्च प्राथमिक स्कूल में कक्षा आठ का विद्यार्थी है।

"स्कूल क्यों नहीं जा रहे हो?" मैंने पूछा।

"कोरोना री वजह ऊँ स्कूल बन्द है," चम्पालाल ने कहा।

"अच्छा, क्या है यह कोरोना?"

"सरजी, या एक बेमारी फैली है, घणा मनक मरी रिया है।"

"हाँ, तो यह बात तुमने अपनी माँ और गाँववालों को बताई है? क्या तुमने उन्हें बताया है कि कोरोना से कैसे बचा जा सकता है?"

चम्पालाल ने झेंपते हुए अपनी गर्दन झुका ली।

उसकी माँ अभी भी खिड़की से झाँकते हुए हम सभी को सशंकित नज़रों से देख रही थीं। इतने में सरकारी स्कूल के दो शिक्षक भी यहाँ आ पहुँचे। इनमें से एक शिक्षक दिनेशजी पुराने परिचित निकले। वे हमारी कार्यशालाओं में शामिल होते रहे हैं। हम लोगों को देखते ही खुश हो गए। दूसरे शिक्षक का नाम सोहनलाल था। दिनेशजी ने बताया, "कुछ देर पहले पीईईओ साब (पंचायत के सीनियर सेकंडरी स्कूल के प्रधानाचार्यजी) का फोन आया था। कह रहे थे कि गाँव में टीम आई है, आप लोगों को भी उनके साथ रहना है और गाँव के लोगों को समझाने में मदद करना है। इसीलिए हम भी आ गए।"

चम्पालाल ने अपने शिक्षकों को देखते ही नमस्ते किया।

"चम्पालाल कितर हैं, भणाई-लिखाई वेई री हैं या नी?" दिनेश सर ने पूछा।

चम्पालाल ने पहले की तरह ही

शर्माकर गर्दन झुका दी। उसकी माँ अभी तक खिड़की के भीतर से कुछ बोल रही थीं। शायद हम कुछ अजनबी लोगों के बीच अपने बेटे को देखकर कुछ असहज थीं, लेकिन अपने गाँव के शिक्षकों के ऊपर उन्हें पूरा भरोसा था। इसीलिए उनके आते ही शान्त हो गईं। ये दोनों शिक्षक पिछले दस-बारह सालों से इसी गाँव के स्कूल में बच्चों को पढ़ा रहे हैं।

टीकाकरण जागरूकता अभियान

आज सुबह इस गाँव में आने से पहले, हम लोगों ने पंचायत केन्द्र में स्थित सीनियर सेकंडरी स्कूल जो यहाँ से तकरीबन दस-बारह किलोमीटर दूर है, में एक मीटिंग की थी। इस मीटिंग में स्कूल के प्रधानाध्यापक, जिन्हें अब पंचायत आरम्भिक शिक्षा अधिकारी कहा जाता है, शिक्षक-शिक्षिकाएँ, सरपंच, वॉर्ड पंच, एएनएम, आशा और आंगनवाड़ी कार्यकर्ता मौजूद थीं। इनके अलावा कुछ आम नागरिक भी मौजूद थे।

आज की इस कोर ग्रुप मीटिंग में पंचायत के दायरे में आने वाले उन गाँव और ढाणियों का चुनाव कर लिया गया था, जहाँ लोग टीका नहीं लगवा रहे हैं। इस मीटिंग के तुरन्त बाद ही पीईईओ सर ने इस पंचायत में आने वाले सभी प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्कूलों के प्रधानाचार्यों और शिक्षकों को यह सन्देश भेज दिया था कि सभी को अपने आसपास के इलाके में आयोजित हो रहे कोविड टीकाकरण जागरूकता अभियान में शामिल होना है। दिनेश सर और सोहनलाल सर के आ जाने से हम लोगों को बहुत मदद मिली।

खैर, चम्पालाल के साथ हमारी बात आगे बढ़ी। मैंने पूछा, "तुम स्कूल में विज्ञान पढ़ते हो?"

"हाँ।"

"तुम्हें पता है, यह कोरोना क्या है? कैसे बीमार करता है हम सबको?"

"सर यो एक वाइरस है, जो ओंपरे नाक ऊँ न मुंडा ऊँ माइने परो जावे। अणी वातरे मास्क लगाणों और हाथ धोवतों रेवनों सावे," चम्पालाल ने कहा।

चम्पालाल के पास मास्क नहीं था। मोनिका ने उसे एक मास्क दे दिया। मैंने उसे साथ चलकर, गाँव के लोगों को भी यही सब बातें समझाने के लिए कहा। चम्पालाल तैयार हो गया। मेरे साथी ने उसे भी एक तख्ती दे दी। अब चम्पालाल रास्ता दिखाते हुए हम सबके आगे-आगे चल रहा था। उसकी माँ अब भी खिड़की पर थीं। वे अपने बेटे को हमारे कारवाँ के साथ जाता हुआ देख रही थीं। हमारी टोली ने इस ढाणी का एक पूरा फेरा लगाया। जो भी लोग नज़र आए, उन्हें हम लोगों ने कोरोना से बचाव के तरीके और टीका लगवाने के फायदे के बारे में बताया। अब तक लोग यह

समझने लगे थे कि हमारे पास टीका नहीं है, अतः कुछ लोग घरों से निकलकर हमसे बात करने के लिए राज़ी हो गए थे। इस ढाणी का फेरा पूरा कर हम लोग नीम के पेड़ के नीचे वापस आ गए। अब तक चम्पालाल की माँ भी घर के बाहर आ गई थीं। अपने बेटे को हमारे बीच घुला-मिला देखकर अब वे कुछ सहज हो गई थीं।

हमने चम्पालाल से कहा कि तुम अपनी माँ को भी बताओ कि टीका लगवाना क्यों ज़रूरी है। चम्पालाल ने यही बातें अपनी भाषा में, अपनी माँ से कहीं। उसकी माँ ने भी कुछ जवाब दिया, लेकिन इस बार उनके स्वर में तल्खी नहीं थी, बल्कि वे मुस्करा रही थीं। अपने बेटे की शिक्षा और उसकी, बाहर से आए हुए लोगों की टोली का सदस्य बन सकने की काबिलियत देखकर शायद वे कुछ गौरवान्वित महसूस कर रही थीं।

आशा कार्यकर्ता अणछी बाई ने चम्पालाल की माँ के पास जाकर कहा, "थाँरो छोरों तो माणे हाथे घूमी-घूमी ने लोगाँ ने समझावा को बढ़िया काम कर रियो है, अबे थाँ भी टीकों परो लगावो।"

"वा ठीक, मूँ लगवा लेवाँ, पण अटे ही ज लगवाओ तो परो लगाऊँ, अस्पताल हूदी तो मारा ऊँ नई आवाई," चम्पालाल की माँ ने कहा।

अणछी बाई ने खुश होते हुए हमको बताया, "सरजी, ये टीका लगवाने को तैयार हैं, लेकिन उतनी दूर अस्पताल नहीं जाना चाहती हैं। कह रही हैं कि यहीं पर लगा दो।"

एएनएम पुष्पाजी भी खुश हो गईं थीं। उन्होंने चम्पालाल की माँ से एक बार फिर पूछा, "अठे लावाँ तो लगवाई न?"

चम्पालाल की माँ ने सहमती में सर हिला दिया।

पुष्पाजी ने पास के प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर फोन किया। वहाँ

नियुक्त एक सहकर्मी अपनी मोटरसाइकिल से टीके की पेटी लेकर आने को तैयार हो गया था। यहाँ से मुख्य सड़क तक जाकर उससे वह पेटी लेना थी। पुष्पाजी फौरन रवाना हो गईं। कुछ देर बाद जब वे वापस लौटीं तो उनके हाथ में कोविशील्ड वैक्सीन से भरी नीले रंग की एक पेटी थी।

इस दौरान, हम लोगों ने गाँव में घूमकर यह खबर दे दी थी कि कुछ ही देर में नीम के पेड़ के नीचे, चबूतरे पर कोविड के टीके लगाए जाएँगे। आज किसी को अस्पताल नहीं जाना पड़ेगा। तब तक चम्पालाल की माँ के अलावा एक और बुज़ुर्ग महिला टीका लगवाने को तैयार हो गई थीं। हमारे साथ चल रहे शिक्षक साथियों ने यहाँ की बोली में अपनी बात समझाते हुए यह कमाल कर दिखाया था। जब तक पुष्पाजी वापस लौटीं, तब तक कुल चार लोग टीका लगवाने के लिए तैयार हो गए थे।

टीकाकरण की शुरुआत

नीम के पेड़ के नीचे, चबूतरे पर ही हम लोगों ने अपना बैनर टांग दिया था। ज़मीन पर ही तख्तियाँ भी गाड़ दीं। अच्छा-खासा माहौल बन गया था। टीका लगवाकर लोग वहीं पेड़ के नीचे बैठकर आराम कर रहे थे। कुछ महिलाएँ अभी भी अपने-अपने घरों की खिड़कियों और दरवाज़ों से झाँक रही थीं। जिन चार लोगों को टीका लगा था, लोग उन्हें गौर-से देख रहे थे।

मैं और मेरे साथी शिक्षक, चम्पालाल को साथ लेकर ऊपर पहाड़ पर बसी ढाणी की तरफ चल पड़े। आंगनवाड़ी और आशा कार्यकर्ता भी हमारे साथ ही थीं।

अणछी बाई ने बताया कि इस ढाणी में आज तक कोई सरकारी अधिकारी नहीं आया है। जंगलों और खेतों के बीच से होकर पैदल ही ऊपर की तरफ जाना होता है। अच्छी-खासी दूरी है और रास्ता भी ऊबड़-खाबड़। लगातार पहाड़ पर ऊपर चढ़ते हुए दम फूलने लगा था। हमने ऊपर जाकर देखा तो वहाँ भी सब दरवाज़े बन्द मिले। सिर्फ कुछ घरों में बच्चे और महिलाएँ बैठे नज़र आए। पूछने पर उन्होंने बताया कि घर के बाकी लोग खेतों पर गए हैं। हम लोगों ने उनसे बात की और उन्हें कोरोना बीमारी, उससे बचाव के तरीके और टीकाकरण के बारे में बताया। उनसे नीचे ढाणी में आकर टीके लगावाने का आग्रह भी किया। तकरीबन घण्टे-डेढ़ घण्टे इन पहाड़ों में घूमकर जब हम वापस नीचे, उसी नीम के पेड़ के पास पहुँचे, तो देखा कि काफी भीड़ लगी है। पुष्पाजी ने बताया कि वे अब तक कुल 14 लोगों को टीका लगा चुकी हैं। कुछ और लोग भी तैयार हो गए हैं। वे अपना आधार कार्ड लाने घर गए हैं।

पुष्पाजी, नवली देवी और अणछी बाई, तीनों ही बहुत खुश थीं। इस भील बस्ती में, एक दिन में 14 टीके लग जाना, उनकी नज़र में बहुत बड़ी उपलब्धि थी। गाँव में जो माहौल बना, उसकी देखा देखी, अब और लोग भी तैयार होने लगे थे। ऊपर पहाड़ पर बसे कुछ परिवार भी टीका लगवाने का मन बना रहे थे। पुष्पाजी ने बताया कि गाँव में अक्सर ऐसा ही होता है। जिन्हें टीका लगता है, लोग दो-चार रोज़ उनपर नज़र रखते हैं। यदि वे ठीक-ठाक दिखाई देते हैं, तो लोग स्वयं भी टीका लगवाने के लिए तैयार हो जाते हैं।

आज, सरकारी स्कूल के दोनों शिक्षकों, दिनेशजी और सोहनलालजी का अपने स्कूल के आसपास के समुदाय से जुड़े होना, बहुत काम आया। एक तरह से देखें तो उनके विद्यार्थी चम्पालाल का हमारे अभियान में शामिल हो जाना, आज के अभियान का एक क्रान्तिकारी मोड़ साबित हुआ है। चम्पालाल ने 14 से अधिक लोगों को टीका लगवाने के लिए तैयार करने में मदद की।

यह इस तरह की अकेली कहानी नहीं है। पिछले दो महीनों के दौरान मैं और मेरे साथी राजसमन्द ज़िले की तकरीबन 20 से अधिक पंचायतों के गाँव और ढाणियों में जाकर इसी तरह ही कोरोना से बचाव के लिए टीकाकरण जागरूकता अभियान कर रहे हैं। हमारी संस्था अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, इस इलाके में पिछले कई बरसों से शिक्षकों की क्षमता संवर्धन के लिए काम कर रही है। हम लोग गाँव-गाँव में स्थित सरकारी स्कूलों में जाकर शिक्षकों और बच्चों के साथ काम करते आ रहे हैं। शिक्षकों का प्रशिक्षण, मीटिंग, बाल मेले और रविवार के दिन होने वाली स्वैच्छिक शिक्षक मंच की बैठक, यह सब कुछ यहाँ पिछले आठ सालों से हो रहा है। बस, कोरोना की वजह से, ये बीते दो साल बहुत खराब गुज़रे हैं।

क्यों है टीके का भय?

अलग-अलग गाँव में कार्यरत अपने परिचित शिक्षकों से बातचीत के दौरान हमें मालूम चला कि कुछ इलाकों में टीकाकरण की रफ्तार बहुत धीमी है। शुरू-शुरू में तो सरकार की तरफ से ही टीके कम आ रहे थे। बाद में स्थिति में सुधार आया और ज़्यादा-से-ज़्यादा लोगों तक टीका पहुँचाने का प्रयास किया जाने लगा। इस पूरे ब्लॉक में एक सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र और कुल चार प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र मौजूद हैं। अब हर तीसरे-चौथे दिन टीका आ रहा है। लोग शहर से भाग-भागकर आ रहे हैं और टीका लगवाकर जा रहे हैं, लेकिन कई ऐसे भी इलाके हैं, जहाँ लोग टीका नहीं लगवाना चाहते।

असल में, पहला टीका तो ज़्यादातर लोगों ने ना-नकुर करके भी लगवा लिया था, लेकिन कोरोना की

दूसरी लहर में हुई तमाम मौतों ने उनके मन में कुछ भ्रम डाल दिए हैं। कुछ लोगों को गलतफहमी हो गई कि ये मौतें टीका लगवाने की वजह से हुई हैं। इसी तरह कई युवाओं का मानना है कि इस टीके के लगने से उनकी मर्दानगी कम हो जाएगी। सरकार आबादी कम करना चाहती है, और इसी टीके के साथ इन्सान को नामर्द बनाने की दवाई भी दी जा रही है। आशा कार्यकर्ता ने बताया कि गाँवों में तो महिलाएँ यहाँ तक कह दे रही हैं कि "मुझे टीका लगाकर मार दोगी और मेरे मरद को तुम रख लोगी।"

आंगनवाड़ी और आशा सहायिकाओं का काम था, घर-घर जाकर लोगों को समझाना और उन्हें टीका लगवाने के लिए प्रेरित करना। इन्होंने काफी मेहनत से काम किया है। कई गाँवों में मेरा अनुभव रहा है कि सरकार के कर्मचारियों में आशा और आंगनवाड़ी कार्यकर्ता ही ऐसी थीं, जो घरों के दरवाज़े पर पहुँचकर ही बता देती थीं कि इस घर में किस सदस्य को टीका लगा है, और किस को नहीं। नवली देवी ने बताया कि "लोग तो अतरा तक केड़ देवे हैं कि सरकार वाला असली टीकों तो थाणे लगावे, ने मोरे वातरे नकली टीकों आई रियो हैं, मोए गरीबों ए मारवा रे वाते करी री हैं।"

हमारे देश में शिक्षा अभी सब तक नहीं पहुँच सकी है, लेकिन व्हॉट्सऐप सब तक पहुँच गया है। लोग व्हॉट्सऐप पर तैरते कच्चे-पक्के सन्देश को देख-पढ़कर सही मान लेते हैं। किसी ने कहा कि टीका लगने के बाद शरीर चुम्बक का बन जाता है। लोहे की कैंची, थाली, चम्मच आदि सब चिपकने लगते हैं। इस तरह के भ्रम गाँव से लेकर शहर तक फैले हुए हैं।

इधर, सरकारी अफसर लोगों के पास जाकर, उन्हें तसल्ली से समझाने की बजाय धमकियाँ दे आते हैं कि टीका लगवा लो, नहीं तो सरकार तुम्हारा राशन बन्द कर देगी, नरेगा में मज़दूरी नहीं मिलेगी, शौचालय और घर बनाने को सरकार की तरफ से मिलने वाला पैसा भी नहीं मिलेगा।

एक बार मैंने देखा कि गाँव के उपस्वास्थ्य केन्द्र से टीका लगवाकर लौट रहे लोग अपने हाथ में एक मुहर लगी पर्ची लेकर जा रहे थे।

मैंने पूछा, "यह क्या है?"

"आ पर्ची है, जो नरेगा मेट ए वताकणी है जदी ज कॉम देई," एक महिला ने अपने लम्बे घूँघट के भीतर से कहा।

बताइए, क्या हाल है। हमारे सरकारी अधिकारियों और पंच-सरपंचों को यह समझना होगा कि जो लोग वैसे ही सरकार से डर रहे हैं, उन्हें और डरा-धमकाकर भला क्या फायदा होगा। सभी को टीका लगवाना ज़रूरी है, लेकिन इस तरह धमकी देकर और डराकर नहीं,

बल्कि प्यार और स्नेह से समझाते हुए, यह काम किया जाना चाहिए।

लोगों को जागरूक करने की ज़रूरत

एक लोकतांत्रिक देश में टीका लगवाना या नहीं लगवाना, एक व्यक्ति की स्वेच्छा पर निर्भर करता है। हमारा उद्देश्य तो होना चाहिए उन्हें सरल भाषा में इसके फायदे या नुकसान बताना। इतनी पंचायतों में घूमने पर मुझे तो दो-चार लोग ही ऐसे मिले जो टीका लगवाने को बिलकुल ही तैयार नहीं थे। बाकी ज़्यादातर लोगों को बस यही चिन्ता थी कि टीका लगने के बाद, दो-तीन दिन बुखार आएगा या कमज़ोरी रहेगी, तब उनकी मज़दूरी का क्या होगा। घर में बच्चों के लिए रोटी कौन बनाएगा। खेतों का काम कैसे हो सकेगा आदि। इस तरह की सामान्य चिन्ताओं को तो प्यार से बात करके, या उनकी मुश्किलों को कुछ कम करने में मदद करके भी दूर किया जा सकता है।

कुछ दिन पहले, हम लोग राजसमन्द ज़िले के भीम ब्लॉक में स्थित छापली पंचायत में टीकाकरण जागरूकता अभियान कर रहे थे। यहाँ की चार ढाणियों में चल रहीं नरेगा साइट पर हमारी टीम का जाना हुआ। नरेगा साइट पर काम कर रही महिलाओं को यह तो मालूम था कि कोरोना नाम की बीमारी फैली हुई है, हमें अपना मुँह ढाँककर रखना है, लेकिन इससे बचने के लिए हमें टीका भी लगवाना है, यह बात किसी ने उनसे नहीं कही थी। हम लोगों ने बस इतना किया कि पास के स्वास्थय केन्द्र के पुरुष नर्स को अपने साथ ले आए। उन्होंने इस पंचायत में चल रही प्रत्येक नरेगा साइट पर जाकर तफसील से सभी महिलाओं के साथ बात की और उन्हें बताया कि इस महामारी की दूसरी लहर में बहुत-से लोगों की मौत हुई, लेकिन जिन लोगों को पहला टीका लग गया था, उनकी मौत कम हुई है।

यहाँ के सरपंच और मेट भी बहुत सहयोगी थे। उन्होंने सभी महिलाओं से कहा कि "यदि आप टीका लगवाने जाती हैं, तो उस दिन की दिहाड़ी की चिन्ता बिलकुल न करें। आप आराम-से टीका लगवाइए और वापस आकर पेड़ के नीचे बैठकर आराम कीजिए। यदि थोड़ा-सा बुखार भी आए तो घर रहकर आराम करिए। आप की दिहाड़ी कहीं नहीं जाएगी।" बस, इतने आश्वासन के बाद उस दिन बहुत-से लोगों ने जाकर टीका लगवाया था। शाम को प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र के डॉक्टरों से बात करके पता चला कि आज 40 से अधिक लोगों ने टीका लगवा लिया है। इनमें महिलाओं की संख्या ज़्यादा है। वे सीधे नरेगा साइट से चलकर आ रही हैं और टीका लगवाकर जा रही हैं।

इसी तरह देवगढ़ ब्लॉक की पालड़ी पंचायत में भी एक बस्ती में

कुछ परिवार टीका लगवाने को तैयार नहीं थे। पालड़ी प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र के डॉक्टर स्वयं जागरूकता अभियान में शामिल हुए और घर-घर घूमकर लोगों को समझाया। हमारे साथ आईं एएनएम और एक शिक्षक साथी ने इनके साथ मेवाड़ी भाषा में बातचीत की। महिलाएँ एएनएम बहनजी की उपस्थिति से सहज थीं। उनके पास जाकर अपने निजी सवाल कह पा रही थीं।

"बेनजी, कोई पेट ऊँ वे तो, वणि रे टीकों लागी सके क नी?"

"कण्डे बीपी वै, तो लगई सके क नी?"

"कनने ताव आवतों वे, तो वो लगाई सके क नी?"

"कोई के के आदमी लगावे तो छोरों पैदा जोगो नी रेवे... आ वात हासी है कई?"

"टीकों लगावा ऊँ ताव तो नी आवे?"

किसी की बहू को बच्चा होना है, या किसी की बीपी की दवा चल रही है या कोई बुखार आने से घबरा रहा है आदि मुद्दों को लेकर उनके कई सवाल थे। हमारी टीम में शामिल एएनएम और शिक्षक अजीत सिंहजी ने लोगों से बात करते वक्त अपने हाथ में तख्ती थाम रखी थी। उसमें कोरोना वायरस और एक बड़े-से इंजेक्शन का चित्र बना था। एएनएम बहनजी अपनी बात कह ही रही थीं कि तभी एक बुज़ुर्ग ने कहा, "भई देकों, टीकों तो मूँ परो ल्गाऊँ, पण थारी तकती और टोपी माथे मंडी थकी हुई है, ज्या घणी मोटी हुई है।"

उनके इतना कहते ही ठहाके गूँज गए। इसी खुशनुमा माहौल में कई लोगों ने टीका लगवाने के लिए अपनी सहमती दी। एएनएम ने दूसरे दिन ही टीकों का इन्तज़ाम कर दिया और कई लोगों ने टीके लगवाए। हमारे लिए नरेगा के ठिकाने महिलाओं के साथ संवाद स्थापित करने के

लिए एक स्वतंत्र मंच के रूप में उपयोगी रहे। एक साइट पर तकरीबन 50 महिलाएँ एक साथ मिल जाती थीं। यहाँ पर वे आज़ादी-से अपनी बात कह पाती थीं, जो शायद उनके घरों पर सम्भव नहीं था।

कोर कमेटी का गठन

अब तक अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, राजसमन्द टीम के हमारे साथियों ने अलग-अलग गाँव और ढाणी में तकरीबन 15 से 20 हज़ार लोगों तक पहुँचकर कोरोना से बचाव और टीका लगवाने के महत्व पर बात की है। और तकरीबन 20 से अधिक चुनौतीपूर्ण पंचायतों के कुछ गाँव और ढाणी में यह कोविड टीकाकरण जागरूकता अभियान आयोजित किया जा चुका है। किसी एक पंचायत में स्थित सरकारी सीनियर सेकंडरी स्कूल, समीपवर्ती प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र या उप-स्वास्थ्य केन्द्र, वहाँ कार्यरत एएनएम, आशा और आंगनवाड़ी कार्यकर्ता, सरपंच, वार्ड पंच, गाँव के युवा और वरिष्ठ लोगों को साथ लेकर, हम लोग सबसे पहले एक कोर कमेटी बनाते हैं और उनके साथ मीटिंग करते हैं।

इस मीटिंग में पोस्टर, बैनर या फिर छोटी फिल्म दिखाकर कोरोना के खतरे और इससे बचाव के तरीकों पर बात की जाती है। साथ ही, स्वास्थ्य विभाग द्वारा दिए गए आँकड़े सामने रख यह बताया जाता है कि पंचायत के कुल लक्षित समूह में से कितने लोगों को टीके लग चुके हैं, और कितने लोग अभी बाकी हैं। यहाँ पर मौजूद एएनएम, आंगनवाड़ी और आशा कार्यकर्ता उन कारणों को सबके सामने रखती हैं जिनसे पंचायत में टीकाकरण की प्रक्रिया धीमी है। वे उन समुदायों या ढाणियों के बारे में भी बताती हैं, जहाँ टीकाकरण में चुनौती पेश हो रही हों। इसी मीटिंग में यह रूपरेखा भी बनाई जाती है कि किन क्षेत्रों में जागरूकता के लिए जन-सम्पर्क किया जाना चाहिए। आवश्यकता अनुसार तीन से चार टीमों का गठन किया जाता है। प्रत्येक टीम अपने साथ प्रचार-प्रसार की सामग्री भी लेकर जाती है।

किसी भी पंचायत में यह अभियान महज़ दो-तीन दिन की तैयारी में किया जाता है। कई बार जागरूकता अभियान के दिन ही सुबह 8 से 10 बजे तक कोर समूह की मीटिंग होती है। इसी दिन चुनौतीपूर्ण क्षेत्रों का चुनाव किया जाता है और तीन से चार टोलियों में बँटकर लोग गाँव, ढाणी या नरेगा साइट की ओर निकल पड़ते हैं। पास के उपस्वास्थ्य केन्द्र पर मौजूद डॉक्टर और नर्स उसी दिन या अगले दिन, उपलब्धता के अनुसार, टीकों का इन्तज़ाम करके रखते हैं, ताकि जागरूकता अभियान से प्रेरित होकर आने वाले लोगों को टीका लगाया जा सके।

सहयोग से मिली सफलता

एक तरह से देखें तो यह पूरी मुहिम शिक्षा विभाग, स्वास्थ्य विभाग, महिला एवं बाल कल्याण विभाग, पंचायती राज से जुड़े जन प्रतिनिधियों और अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन के सदस्यों का साझा प्रयास होता है। अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन की मुख्य भूमिका इन सभी को एक उद्देश्य के लिए एक साथ लाने और सरल तरीके से आम लोगों तक अपनी बात पहुँचाने के साधन जुटाने में ज़्यादा है।

एक स्कूल अपने आसपास के समाज का अभिन्न अंग होता है। समाज अपने स्कूल और शिक्षकों पर भरोसा करता है। ऐसे हज़ारों चम्पालाल हर गाँव और ढाणी में हैं, जो अपने शिक्षकों के एक इशारे पर साथ आ जुटने को तैयार हैं। पुष्पाजी जैसी एएनएम, नवली देवी जैसी आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और अणछी बाई जैसी आशा कार्यकर्ता हैं, जो बहुत लगन और मेहनत से काम कर रही हैं।

एक स्कूल को आसपास की प्रकृति, परिवेश और समाज से जोड़ने की बात हमेशा ही की जाती रही है। इस अभियान में हमने अपनी आँखों से देखा कि कैसे शिक्षक अपने समुदाय के लोगों के साथ मिलकर परिवर्तन लाने का महत्वपूर्ण कारक बन सकते हैं।

स्कूल को धुरी बनाकर ऐसे तमाम छोटे-छोटे प्रयास किए जा सकते हैं जिनमें स्थानीय समुदाय एवं स्थानीय शासकीय ढाँचों से कुछ लोग तो इस तरह के प्रयासों में जुड़ने के लिए तत्पर रहते हैं, और सक्रिय योगदान देते हैं। ज़रूरत है तो बस एकजुट होकर प्रयास करने की, लोगों के पास जाकर प्यार से बात करने की, उन्हें समझाने की।

परन्तु साथ ही, यह भी अत्यन्त चिन्ताजनक है कि हमने अपने समाज

में अलग-अलग किस्म की दुनिया बसा ली हैं। शहरों में रहने वाला एक तबका ऐसा है जो भाग-भागकर खुद को और अपने परिवार के लोगों को वैक्सीन लगवा रहा है। शहर में वैक्सीन उपलब्ध नहीं है तो 25-30 किलोमीटर दूर गाँव में जाकर वैक्सीन लगवाकर आ रहा है। और दूसरी तरफ हमारे गाँव हैं, बस्तियाँ हैं जहाँ लोग वैक्सीन लगवाने से कतरा रहे हैं।

हम लोगों तक सही शिक्षा पहुँचाने में असफल रहे हैं। जो लोग शिक्षित भी हुए हैं, उनमें वैज्ञानिक चेतना का अभाव है। उन्होंने स्कूल में पढ़ाए जाने वाले गणित-विज्ञान या इतिहास को सिर्फ पढ़ने के लिए पढ़ा है। इस शिक्षा से प्राप्त समझ और सीख को वे अपने जीवन में इस्तेमाल करने की काबिलियत ही नहीं विकसित कर सके हैं। इसीलिए वे बहुत जल्दी अफवाहों और झूठी खबरों पर यकीन कर लेते हैं। अपने समाज में बहुत गहरे तक बैठी अन्धविश्वास की जड़ों को उखाड़ फेंकने के लिए हमें अच्छी शिक्षा की आवश्यकता है जहाँ एक बच्चे की वैज्ञानिक चेतना को पोषित करने की अपार सम्भावनाएँ हों।

सच कहूँ, तो इस तरह के टीकाकरण जागरूकता अभियानों द्वारा हम बहुत-से लोगों को टीका लगवाने में मदद कर पा रहे हैं, यह मुझे बहुत अच्छा लग रहा है। इस अभियान का हिस्सा बनकर दूर-दराज़ के गाँव में रहने वाले लोगों की शिक्षा और स्वास्थ्य सम्बन्धी चुनौतियों को थोड़ा और करीब से, अपनी आँखों से देखकर महसूस कर पाने का मौका मिला है। मुझे लगता है कि जन स्वास्थ्य से जुड़े मुद्दों पर हमारी सरकारों को और भी ज़्यादा ध्यान देने की ज़रूरत है। गाँवों में रहने वाले लोगों के लिए और ज़्यादा प्राथमिक अस्पताल खोलने और वहाँ पर डॉक्टर-नर्स, दवाइयाँ तथा चिकित्सा उपकरण मुहैय्या कराने की बहुत आवश्यकता है। मेरे मन में आम लोगों के लिए उपलब्ध बुनियादी चिकित्सा सुविधाओं को लेकर केन्द्र और राज्य सरकारों से कई सवाल भी हैं। उनकी बात कभी और करेंगे। फिलहाल, मुझे विनय और चारुल के गीत की ये पंक्तियाँ बहुत याद आ रही हैं।

मेरी बूढ़ी माँ को जानने का हक है,
क्यों गोली, सुई, नहीं दवाखाने
पट्टी-टाँके का सामान नहीं।

मोहम्मद उमर: अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, राजसमन्द, राजस्थान में कार्यरत हैं। गणित अध्ययन एवं शिक्षण में विशेष रुचि।

यह टीकाकरण अभियान जुलाई, 2021 में किया गया था।

सभी फोटो: मोहम्मद उमर।

हिन्दी हाज़िर है!

टी. विजयेंद्र

हिन्दी को लेकर लिखे गए कई लेख भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'भारत दुर्दशा' नाटक की शैली में 'छाती पीटते' दिखाई देते हैं। यह आलेख हिन्दी साहित्य के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ लिखा गया है। साहित्यिक हिन्दी का इतिहास अपेक्षाकृत संक्षिप्त है जिसकी शुरुआत 1860 के आसपास ही हुई थी। आधुनिक साहित्यिक हिन्दी का इतिहास तो और भी छोटा है जो प्रेमचन्द की मृत्यु के साथ 1936 के आसपास शुरू हुआ था। इस छोटी-सी अवधि में हिन्दी का एक बड़े क्षेत्र में विस्तार हुआ है और आज का हिन्दी साहित्य, दुनिया की बेहतरीन साहित्यिक परम्पराओं में गिना जाता है।

यह आलेख इस अद्‌भुत यात्रा को एक विहंगम दृष्टि से देखने की कोशिश करता है। इसे सामान्य पाठक को ध्यान में रखते हुए लिखा गया है।

हिन्दी क्या है?

अगर भाषा की बात करें तो 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है। पहले अर्थ में यह हिन्दी भाषी क्षेत्र की लगभग 30 भाषाओं के समूह से जुड़ा है। किशोरीदास वाजपेयी (1898-1981) ने इसे भाषाओं का एक 'गणतंत्र' बताया है और तीन विशेषताओं का उल्लेख किया है – पहली, 'का' प्रत्यय का प्रयोग, जैसे का, की, के, को आदि। दूसरी, भौगोलिक निरन्तरता। तीसरी, देवनागरी लिपि का प्रयोग। हिन्दी भाषी क्षेत्र उत्तर में हिमाचल प्रदेश और उत्तराखण्ड, पूर्व में बिहार और छत्तीसगढ़, पश्चिम और दक्षिण[1] में राजस्थान और मध्य प्रदेश तक फैला हुआ है। एक अन्य अर्थ में, हिन्दी क्षेत्र में पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तरी कर्नाटक और तेलंगाना भी शामिल हैं जहाँ हिन्दी अच्छी तरह समझी जाती है। यही वजह है कि इस विस्तृत हिन्दी क्षेत्र में भारत सरकार हिन्दी भाषा में पत्र भेजती है।

'हिन्दी' शब्द, अपने दूसरे अर्थ में, एक विशेष क्षेत्र की एक खास भाषा से जुड़ा है। इस भाषा को 'खड़ी बोली' के रूप में जाना जाता है और इसका स्थानीय क्षेत्र पश्चिमी उत्तर प्रदेश में मेरठ ज़िला है। भाषाई तौर पर देखें तो इसकी व्याकरणिक संरचना उर्दू और दखनी जैसी है। दखनी गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तरी

कर्नाटक और तेलंगाना सहित पूरे पश्चिमी भारत में अनेक रूपों में मौजूद है।

इस लेख में हम 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग खड़ी बोली के साहित्यिक रूप के लिए करेंगे। इस हिन्दी को उर्दू की बेटी कहा जाता है और उर्दू को ही दखनी की बेटी कहा जाता है। इसे थोड़ा और विस्तार से समझने की ज़रूरत है।

दखनी: आधुनिक उर्दू और हिन्दी की जननी

दखनी के मशहूर कवि, वली दखनी (जो वली औरंगाबादी और वली गुजराती के नाम से भी जाने जाते हैं) जब 1700 में दिल्ली आए, तो उन्होंने अपनी गज़लों से दिल्ली के कवियों को हैरान कर दिया। उन्हें फारसी के कवियों से बहुत प्रशंसा मिली। वली को सुनने के बाद, उनमें से कुछ कवियों ने भी लोकभाषा उर्दू को अपनी काव्य अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। प्रसिद्ध कवि शाह हातिम, शाह अब्रो और मीर तकी मीर उनके प्रशंसकों में से थे।

उस समय दिल्ली में दरबारी कवि फारसी और अरबी में रचनाएँ लिख रहे थे। अन्य कवियों के लिए, ब्रज और अवधी साहित्यिक और धार्मिक अभिव्यक्तियों की भाषाएँ थीं। सभी के द्वारा बोली जाने वाली भाषा खड़ी बोली थी। जब कवियों ने वली को दखनी में सुना, तो वे इस बात से

चित्र-1: वली दखनी, या वली मुहम्मद वली, लोकभाषा उर्दू में गज़ल लिखने वाले पहले स्थापित कवि थे।

हैरान थे कि एक लोकभाषा इतनी समृद्ध साहित्यिक अभिव्यक्ति कर सकती है (रेख्ता में भी इतना अच्छा लिखा जा सकता है!)।

वली दखनी का जन्म महाराष्ट्र के औरंगाबाद में वली मुहम्मद (1667-1731/1743) के नाम से हुआ था। वे गुरु की तलाश में गुजरात गए और वजीहुद्दीन गुजराती के शागिर्द बने। फिर जल्द ही वे मशहूर हो गए। वे वापस आकर औरंगाबाद में बस गए, लेकिन उन्होंने दो बार दिल्ली की यात्रा की। उनकी पहली यात्रा से मिले नाटकीय नतीजों के बारे में ऊपर बताया जा ही चुका है। इसके बाद उन्हें उर्दू कविता के प्रणेता के रूप में जाना जाने लगा। उनकी मृत्यु अहमदाबाद में हुई। गोधरा दंगों के बाद हिन्दू फासीवादियों ने उनकी

कब्र को तोड़ दिया था। वली दखनी ने मसनवी और कसीदों के अलावा 473 गज़लों की रचना की। उनकी गज़लें आज भी कई गायकों द्वारा गाई जाती हैं, जिनमें आबिदा परवीन भी शामिल हैं।

इस तरह, 18वीं शताब्दी की शुरुआत में, वली की यात्रा के बाद उर्दू ने एक साहित्यिक भाषा के रूप में जन्म लिया। आधुनिक हिन्दी (देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली) और उर्दू (फारसी-अरबी या उर्दू लिपि में लिखी जाने वाली), दोनों ही दिल्ली और मेरठ क्षेत्र में बोली जाने वाली खड़ी बोली के रूप हैं। दरबारी हलकों, फारसी और अरबी विद्वानों, और खास तौर पर, दिल्ली के मुसलमानों ने इस भाषा को बहुत चाव से अपनाया। इसके साथ ही, 18वीं शताब्दी बीतते-बीतते मुगल-घराना उर्दूमय हो गया। शुरुआत के करीब 60 वर्षों तक उर्दू पर दखनी कवियों, सूफी सोच और बोलचाल की भारतीयता का प्रभाव बना रहा।

हालाँकि, अमीर खुसरो (1253-1325) और कबीर (1398-1448) ने 14वीं और 15वीं सदी में खड़ी बोली का इस्तेमाल किया, लेकिन 'हिन्दी' 19वीं सदी के उत्तरार्ध में ही साहित्यिक भाषा बनी। उस समय तक लेखक ज़्यादातर ब्रज और अवधी में लिख रहे थे। ये राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिन्द' (1824-1895) और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1849-1882) ही थे जिन्होंने पहली बार खड़ी बोली को देवनागरी लिपि में लिखना शुरू किया। वे उर्दू की लोकप्रियता से काफी प्रभावित थे, जो फारसी-अरबी या उर्दू लिपि में लिखी गई थी। शुरुआत में, अन्तर मुख्य रूप से लिपि में था और दोनों लेखक दोनों ही लिपियों को जानते थे। प्रसिद्ध हिन्दी लेखक प्रेमचन्द (1880-1936) ने भी शुरुआत में, नवाबराय के नाम से, उर्दू में ही लिखा। इस तरह, आधुनिक हिन्दी महज़ 150 साल पुरानी है, और उर्दू की तरह दखनी से प्रेरित है।

केरल के 20वीं सदी के हिन्दी विद्वान डॉ. वी.पी. मुहम्मद कुंज मेट्टार (1946-) ने आधुनिक हिन्दी के स्रोत के रूप में दखनी को स्थापित किया। डॉ. सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय (1890-1977) ने भी व्यक्त किया है कि यह दखनी ही थी जिसने उत्तर में ब्रज की जगह खड़ी बोली के इस्तेमाल की शुरुआत की। बल्कि, इस भाषा के लिए 'हिन्दी' नाम की उत्पत्ति भी दक्षिण में हुई है। 17वीं शताब्दी में एक तमिल कवि, काज़ी मुहम्मद बहारी ने अपने सूफी काव्य संग्रह 'मन लगन' में दखनी के लिए 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग किया था।[2]

उर्दू-हिन्दी का सिलसिला 1860-1936

साहित्य के इतिहास को देखें तो उसे निश्चित अवधियों में बाँटना

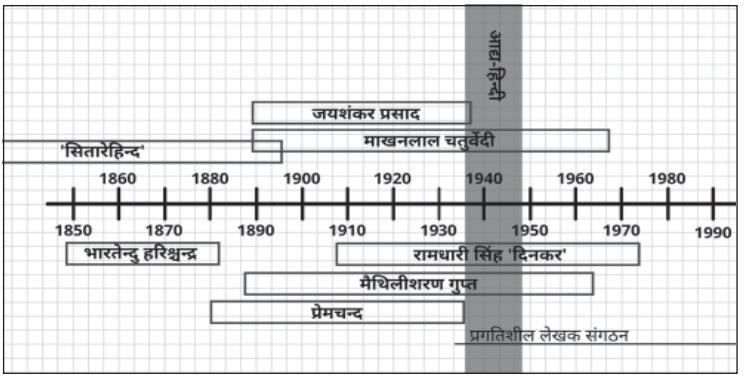

चित्र-2

हमेशा ही थोड़ा पेचीदा होता है। जहाँ कुछ नया पैदा हो रहा होता है, वहीं पुराना भी बहुत लम्बे समय तक बना रहता है। कई लेखक, खासकर गद्य लेखक वृद्धावस्था में परिपक्व होते हैं। इसलिए उल्लेख किए गए वर्षों को केवल सांकेतिक रूप में लिया जाना चाहिए।

इस दरमियान, साहित्य की विषय-वस्तु रूसी क्रान्ति, 1929 की वैश्विक मन्दी के दौरान उपजे श्रमिक आन्दोलन और अनूदित रूसी साहित्य (टॉल्स्टॉय, गोर्की, चेखव) की उपलब्धता के प्रभाव में आकर, देशभक्ति के स्वर से 'प्रगतिशील लेखक संगठन' में बदलती चली गई। प्रेमचन्द यकीनन इस समय के महान लेखक थे।

एक तरफ तो ये बड़े बदलाव हो रहे थे, वहीं दूसरी तरफ उर्दू स्रोतों से 'किस्सा हातिमताई' की तर्ज़ पर एक अन्य शृंखला के ज़रिए हिन्दी का एक बड़ा पाठक-वर्ग तैयार हो रहा था। यह देवकीनन्दन खत्री (1861-1913) के हिन्दू राजा-रानियों और जादूगरों से भरे उपन्यास 'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकान्ता सन्तति' के ज़रिए हुआ।

देवनागरी में हिन्दी की लड़ाई राजनीतिक अखाड़ों में भी लड़ी गई, ताकि हिन्दुओं के लिए उन अदालतों में नौकरियाँ पैदा की जा सकें जहाँ मुसलमानों का वर्चस्व था, क्योंकि अदालतों में उर्दू लिपि का इस्तेमाल होता था। वीर भरत तलवार (1947-) ने अपनी किताब 'रस्साकशी' में इस बारे में लिखा है।[3]

आद्य-हिन्दी, 1936-1947

हिन्दी/देवनागरी की लड़ाई तो जीत ली गई, लेकिन जो हिन्दी सामने आई, वह कुछ बनावटी लग रही थी। इसके प्रमुख लेखक पटना में रामधारी सिंह 'दिनकर' (1908-1974), खण्डवा में माखनलाल चतुर्वेदी (1889-1968), चिरगाँव,

झाँसी में मैथिली शरण गुप्त (1886-1964) और बनारस में जयशंकर प्रसाद (1889-1937) थे। स्कूली पाठ्यक्रम में शामिल, माखनलाल चतुर्वेदी की प्रसिद्ध कविता 'पुष्प की अभिलाषा' शायद इस आद्य-हिन्दी का सबसे लोकप्रिय उदाहरण है। ये लेखक प्रतिभाशाली थे, और बंगाल के लेखन से प्रभावित थे, लेकिन यह भाषा अभी भी बहुत अपरिपक्व थी।

इन प्रतिभाशाली लेखकों द्वारा ऐसी कृत्रिम भाषा का निर्माण करने के कई कारण हैं। एक साहित्यिक भाषा की समृद्धि, लोकभाषा के साथ उसके सम्पर्क और उसकी परम्परा से आती है। ऐतिहासिक कारणों से, इन लेखकों ने उर्दू साहित्य की परम्परा से कटने का फैसला किया। नई हिन्दी के ये केन्द्र, खड़ी बोली के क्षेत्र के बाहर थे – भोजपुर/मगही में दिनकर, निमाड़ में माखनलाल चतुर्वेदी और बुन्देलखण्ड में मैथिली शरण गुप्त। उनके लिए खड़ी बोली की यह परम्परा सुलभ नहीं थी जो पश्चिमी भारत के निर्गुण सन्तों के साथ यात्रा करके अन्ततः साहित्यिक दखनी में विकसित हुई थी। हिन्दी क्षेत्र में इस परम्परा को तुच्छ समझा जाता था, लेकिन आचार्य क्षितिमोहन सेन (1880-1960) ने अपनी मौलिक पुस्तक 'मध्य युगेर साधना' के माध्यम से इसके महत्व को स्थापित किया। शान्तिनिकेतन में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी (1907-1979) ने, जो सेन को अपना गुरु मानते थे, इसके बारे में जाना और बनारस में हिन्दी भाषी क्षेत्र में कबीर को उनका स्थान दिलाने की कोशिश की। उन्होंने कबीर पर एक बेहतरीन किताब भी लिखी, लेकिन उसका स्वागत किए जाने की बजाय उन्हें बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से निकाल दिया गया।

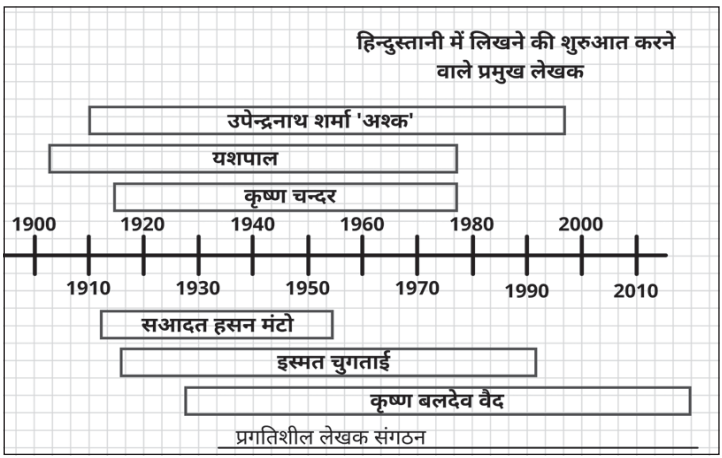

चित्र-3

इस वजह से उर्दू-हिन्दी का यह सिलसिला लम्बे समय से कायम है। आज भी 'हिन्दुस्तानी' के समर्थक मौजूद हैं, और मुम्बई से प्रकाशित होने वाली एक पत्रिका इसी के लिए समर्पित है। यह परम्परा मुख्य रूप से पंजाब क्षेत्र के लेखकों के एक समूह द्वारा शुरू की गई थी, जो विभाजन और लैंगिकता जैसे विषयों को लेकर लिख रहे थे। इनमें सआदत हसन मंटो (1912-1955), कृष्ण चन्दर (1914-1977), इस्मत चुगताई (1915-1991), यशपाल (1903-1976) और उपेन्द्रनाथ शर्मा 'अश्क' (1910-1996) शामिल थे। पहले तीन लेखकों को उर्दू लेखक भी माना जाता है जिनकी रचनाएँ दोनों लिपियों में बड़े पैमाने पर प्रकाशित होती हैं। इस शैली में एक अन्य महत्वपूर्ण लेखक कृष्ण बलदेव वैद (1927-2020) थे, खास तौर पर उनकी कृति 'गुज़रा हुआ ज़माना'।

लोकप्रिय स्तर पर, 70 के दशक तक रंगमंच और बॉलीवुड उर्दू-हिन्दी के सिलसिले की इस परम्परा में बने रहे। इब्ने सफी (1928-1980) की अपराध कहानियाँ 'जासूसी दुनिया' नाम की एक शृंखला के रूप में हिन्दी और उर्दू, दोनों में प्रकाशित हुई। पंजाबी मज़दूर वर्ग से आए एक कम्युनिस्ट, ओमप्रकाश शर्मा (1924-1998) क्राइम/थ्रिलर शैली के एक अन्य महत्वपूर्ण लेखक थे। उनकी किताबों में भारतीय गुप्तचर सेवा और के.जी.बी. साथ मिलकर सी.आई.ए. की योजनाओं को विफल करने के लिए काम करते हैं! शीत युद्ध के दौरान यह काफी क्रान्तिकारी भी था, क्योंकि तब पश्चिमी थ्रिलर किताबें कम्युनिज़्म से होने वाले खतरे को वीभत्स रूप से दर्शा रही थीं। उन्होंने एक बहुत ही पठनीय आत्मकथा भी लिखी जो उनके समय और साहित्य में प्रचलित प्रवृत्तियों के बारे में कई विवरण देती है। मज़दूर वर्ग से आए एक अन्य कम्युनिस्ट शिव नारायण श्रीवास्तव (1900-1980) थे, जो मुम्बई और इन्दौर में कपड़ा मज़दूर रहे थे। 'भारत का गोर्की' के नाम से मशहूर इस लेखक की सबसे मशहूर किताब 'धुन, आग और इन्सान' है। 'शमा' जैसी कई लोकप्रिय पत्रिकाएँ दोनों लिपियों में प्रकाशित होती रही हैं।

आधुनिक हिन्दी

हिन्दी के जिस परिपक्व रूप को आज हम जानते हैं, उसकी शुरुआत तीन महत्वपूर्ण कवियों ने की थी – निराला (सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'; 1899-1961), त्रिलोचन शास्त्री (1917-2007) और शमशेर (शमशेर बहादुर सिंह; 1911-1993)। अज्ञेय (सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन; 1911-1987) एक बहुआयामी लेखक थे और इस काल को परिभाषित करने वाली महत्वपूर्ण उपस्थिति थे। वे कवि, उपन्यासकार, निबन्धकार, सम्पादक और एक बेहतरीन

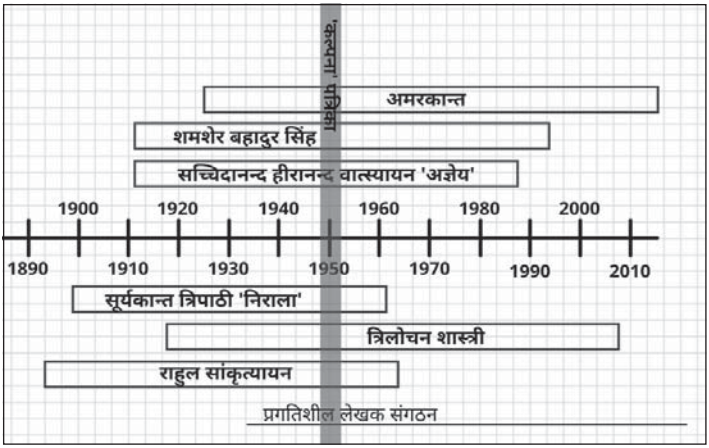

चित्र-4: *आधुनिक हिन्दी की शुरुआत करने वाले प्रमुख लेखक।*

अनुवादक थे। कहानी विधा में शायद सबसे श्रेष्ठ लेखक अमरकान्त (1925-2014) थे। इन लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित करने में हैदराबाद की साहित्यिक पत्रिका 'कल्पना' ने अहम भूमिका निभाई।

राहुल सांकृत्यायन (1893-1963) इस अवधि के एक अनूठे लेखक थे। इस बहुज्ञ और बहुभाषाविद् ने समाजशास्त्र, इतिहास, भारतविद्या, दर्शनशास्त्र, बौद्ध धर्म, तिब्बत अध्ययन, कोशविज्ञान, व्याकरण, पाठकीय सम्पादन, लोक-साहित्य, विज्ञान, नाटक और राजनीति के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। वे एक यात्री, संस्कृत एवं पाली के विद्वान, वामपन्थी कार्यकर्ता और आखिरकार एक बौद्ध थे। उन्होंने यात्रा वृतान्त, वामपन्थी कथा साहित्य (वोल्गा से गंगा), मज़दूर वर्ग के लिए लेखन (भागो नहीं दुनिया को बदलो), जीवनियाँ (मार्क्स और माओ पर), यात्रा पर एक ग्रंथ (घुमक्कड़ शास्त्र), विज्ञान गल्प और यूटोपियन (आदर्शलोकीय) लेखन, इस्लाम, बौद्ध धर्म और विश्व दर्शन पर केन्द्रित किताबों सहित, हिन्दी में लगभग 100 किताबें लिखीं। उनकी रचनाओं का भारतीय और विदेशी भाषाओं में बड़ी संख्या में अनुवाद हुआ और उन्होंने कई लेखकों और हज़ारों पाठकों को प्रभावित और प्रेरित किया।

हिन्दी की इस पुनरावृत्ति को विकसित करने में अनुवादों ने एक बड़ी भूमिका निभाई। पहले बांग्ला से अनुवाद हुए। 'माया' और 'मनोहर कहानियाँ' जैसी पत्रिकाएँ बांग्ला से अनूदित रचनाओं को नियमित रूप से

प्रकाशित करती थीं। शरतचन्द्र चटर्जी, बंकिमचन्द्र चटर्जी और रवींद्रनाथ ठाकुर की रचनाओं का बड़े पैमाने पर अनुवाद किया गया। कई हिन्दी लेखक बांग्ला अच्छी तरह जानते थे; वहीं पटना, बनारस, इलाहाबाद और आगरा में रहने वाले कई बंगाली लेखक हिन्दी अच्छी तरह जानते थे। इसने हिन्दी भाषा को आश्रय लेने के लिए एक वृहद परम्परा प्रदान की।

अँग्रेज़ी से अनुवाद हिन्दी के संवर्द्धन का दूसरा स्रोत था, और अँग्रेज़ी के माध्यम से फ्रेंच, जर्मन और रूसी साहित्यिक परम्पराओं तक इसकी पहुँच भी बढ़ी। चीनी साहित्य के मामले में भी इस तरह के अनुवादों ने बड़ी भूमिका निभाई। यहाँ गोर्की के अनुवादों का विशेष तौर पर उल्लेख करने की ज़रूरत है। चूँकि गोर्की की पृष्ठभूमि मज़दूर वर्ग की थी इसलिए अनुवादकों को भारतीय मज़दूर वर्ग से वैसी ही भाषा और मुहावरों को तलाशना पड़ा।

हिन्दी क्षेत्र की क्षेत्रीय भाषाओं के प्रभाव ने भी निश्चित रूप से एक अहम भूमिका निभाई। इसके सबसे प्रभावशाली लेखक मिथिला क्षेत्र के फणीश्वर नाथ 'रेणु' (1921-1977) थे। 'उसने कहा था' में चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' (1883-1922) और 'एक चादर मैली सी' में राजिन्दर सिंह बेदी (1915-1984) ने पंजाबी का बहुत खूबसूरती से इस्तेमाल किया। मनमोहन पाठक ने अपने उपन्यास 'गगन घटा घहरानी' में झारखण्ड हिन्दी का इस्तेमाल भी बहुत काव्यात्मक ढंग से किया है। विजयदान देथा (1926-2013) ने राजस्थानी लोककथाओं की संवेदना को हिन्दी में अभिव्यक्त किया। उनका लिखा लोकसाहित्य 'बातां री फुलवारी' के नाम से कई खण्डों में प्रकाशित हुआ, साथ ही उन्होंने आधुनिक हिन्दी में लोक पर आधारित लघुकथाएँ भी लिखीं। उन्होंने लोककथाओं में आधुनिक संवेदनशीलता को तलाशा। मनोहर श्याम जोशी (1933-2006) कुमाऊँनी अनुभूतियों को हिन्दी में लेकर आए। लेकिन इससे भी बढ़कर, उन्होंने आधुनिकता, कल्पना और जादुई यथार्थवाद का प्रयोग बड़ी सहजता के साथ किया।

1960 और 70 के दशक के उत्तरार्द्ध की प्रचण्ड लहर ने हिन्दी में वाम-प्रभावित साहित्य की एक नई परम्परा शुरू की। इसमें प्रमुख थे उग्र युवा कवि, सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' (1936-1975), काशीनाथ सिंह (1937), जिन्होंने 'अपना मोर्चा' से ख्याति प्राप्त की, और कवि आलोकधन्वा ('गोली दागो पोस्टर', 'घर से भागी हुई लड़कियाँ')।

लोकप्रिय साहित्य, समाचार पत्रों (नवभारत टाइम्स, हिन्दुस्तान, नई दुनिया और राजस्थान पत्रिका) तथा पत्रिकाओं (धर्मयुग, सारिका, सरिता,

माया, मनोहर कहानियाँ और दिनमान) ने भी इसमें एक बड़ी भूमिका निभाई। गुलशन नन्दा (1929-1985) एक प्रमुख बेस्टसेलर लेखक के रूप में उभरे। अपराध की कहानियाँ बड़ी तादाद में लिखी जाने लगीं और सुरेन्द्र मोहन पाठक (1940-) जैसे कई नए लेखकों ने भी बड़ी संख्या में अपने अनुयायी तैयार किए।

अन्त में, स्वतंत्रता के बाद, टॉल्स्टॉय ने जिसे 'मँझला साहित्य' कहा था, उसका एक विस्फोट हुआ (यानी न तो महान, न ही लुगदी बल्कि परिष्कृत भाषा में काफी पठनीय साहित्य लिखा गया)। हिंद पॉकेट बुक्स, राजकमल और राजपाल ने पेपरबैक के रूप में सस्ती किताबें प्रकाशित कीं और एक बड़ा, नया पाठक वर्ग बनाया। इस युग में हरिवंश राय 'बच्चन' (कविता और गद्य, दोनों में), शिवानी, वृन्दावन लाल वर्मा, जैनेन्द्र, भीष्म साहनी, धर्मवीर भारती, दुष्यन्त कुमार, कमलेश्वर जैसे कई महत्वपूर्ण लेखक हुए। यह याद रखना चाहिए कि मँझले और महान साहित्य के बीच कोई स्पष्ट सीमा रेखा नहीं है। कई बेहतरीन लेखकों ने मँझला साहित्य लिखा है।

आधुनिक संवेदनशीलता के साथ आधुनिक हिन्दी

हिन्दी साहित्य की आधुनिक संवेदनशीलता में अतीत के वर्ग-जाति मुद्दों के साथ-साथ नारीवादी और दलित मुद्दे भी शामिल हैं। इसमें पुराने रूपों से अलग होना भी शामिल हो सकता है जिसे साहित्य की उत्तर-मार्केज़ियन दुनिया कहा जाता है।

कविता में यह 'तार सप्तक' 1 और 2 (1943) के साथ शुरू हुआ, जिसमें गजानन माधव मुक्तिबोध (1917-1964) इस अनुभूति के सबसे

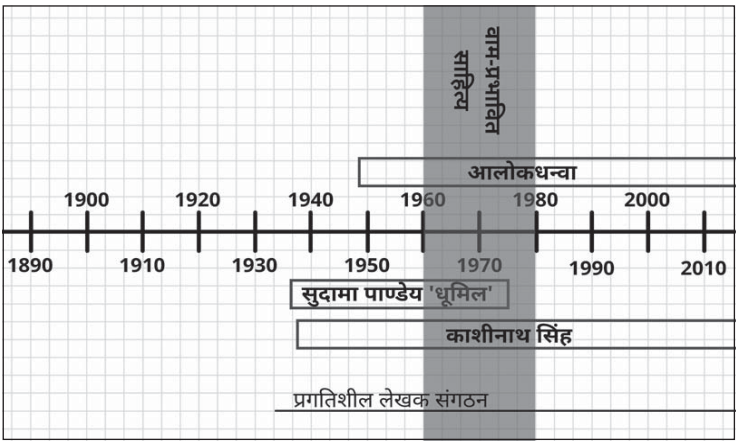

चित्र-5

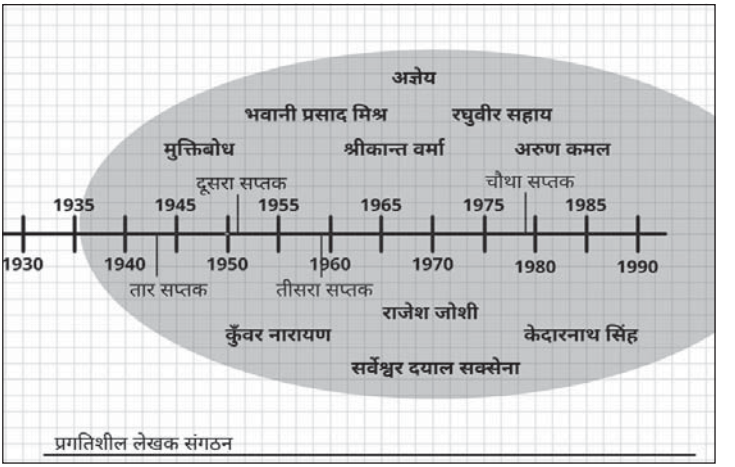

चित्र-6: *1943 से 1979 के बीच चार सप्तक प्रकाशित किए गए थे। चारों सप्तकों के कुछ प्रमुख कवियों के नाम (किसी विशेष क्रम में नहीं) अण्डाकार घेरे में प्रस्तुत हैं।*

महत्वपूर्ण कवियों में से एक के रूप में उभरे। इन सप्तकों का सम्पादन अज्ञेय ने किया था और अब तक कुल चार सप्तक प्रकाशित हुए हैं। इस परम्परा के कुछ महत्वपूर्ण कवि हैं अज्ञेय, भवानी प्रसाद मिश्र (1913-1985), रघुवीर सहाय (1929-1990), सर्वेश्वर दयाल सक्सेना (1927-1983), केदारनाथ सिंह (1934-2018), श्रीकान्त वर्मा (1931-1986), कुँवर नारायण (1927-2017), राजेश जोशी (1946-) और अरुण कमल (1954-)।

गद्य में, शायद निर्मल वर्मा (1929-2005) ही हैं जिन्होंने इस आधुनिक संवेदनशीलता को चिह्नित किया है। इससे बेहद प्रतिभाशाली लेखकों की एक नई पीढ़ी के लिए रास्ता खुल गया। उदाहरण के लिए, यहाँ हमारे पास विनोद कुमार शुक्ल (1937-), उदय प्रकाश (1952-), संजय, अब्दुल बिस्मिल्लाह (1949-), सुरेन्द्र वर्मा (1941-), गीतांजलि श्री (1957-), कृष्णा सोबती (1925-2019) और अलका सरावगी (1960-) जैसे लेखक हैं। अलका सरावगी के साथ 21वीं सदी शुरू होती है जहाँ हमारे पास एक बिलकुल अलग अनुभूति और रूप में एक क्रान्तिकारी रवानगी है। यानी हिन्दी सचमुच हाज़िर हो गई है!

कुछ चुनौतियाँ

हिन्दी की लोकप्रियता और प्रसार से कुछ समस्याएँ पैदा हुई हैं। भाषा की दृष्टि से आलोचना की जाती है कि यह हिन्दी किसी विद्यार्थी या

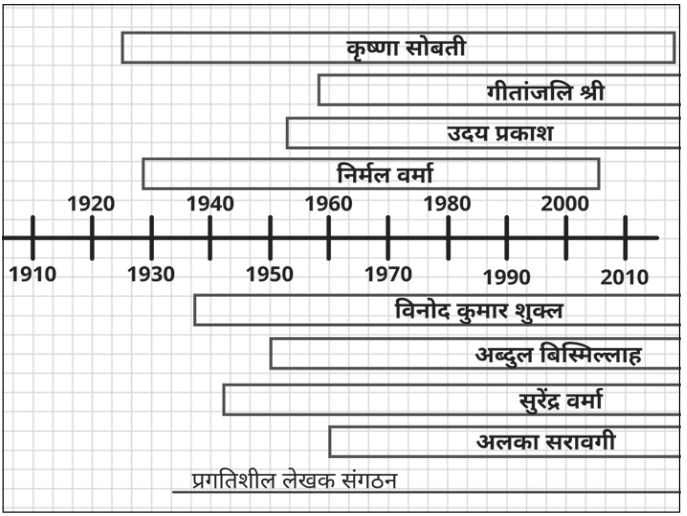

चित्र-7: *आधुनिक संवेदनशीलता के प्रमुख लेखक।*

रिक्शाचालक की समझ से बाहर की है। हिन्दुस्तानी के लिए फिर हो-हल्ला होने लगता है। अँग्रेज़ी के प्रभाव को लेकर आशंकाएँ अपनी जगह हैं ही।

शायद सबसे बड़ी समस्या इस धारणा का होना है कि हिन्दी संस्कृत की बेटी है। हालाँकि, पिछले 50 वर्षों में विद्वानों ने इस मान्यता[4] को पूरी तरह से खारिज कर दिया है, लेकिन इसकी पैठ इतनी गहरी हो चुकी है कि हिन्दी के लेखक आज भी इससे प्रभावित हैं। ऐसा नहीं है कि वे इस समस्या से अनजान हैं, लेकिन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, महावीर प्रसाद द्विवेदी और आचार्य रघुवीर के शब्दकोष द्वारा रखी गई नींव के साथ हिन्दी की संरचना में यह धारणा घुल-सी गई है।

व्याकरण के स्तर पर संस्कृत समास और सन्धि ने तो गज़ब ही ढाया है। सन्धि का प्रयोग करते हुए प्रत्यय को मुख्य शब्द से जोड़ना हिन्दी के स्वभाव में नहीं है। शब्दावली को लेकर, कई लेखक 'शुद्ध हिन्दी' की धारणा पर कायम हैं। वे 'तत्सम' (अर्थात संस्कृत मूल के) शब्दों का उपयोग करते हैं, जिनमें से कुछ का उच्चारण हिन्दी-भाषी दुनिया के अधिकांश लोग नहीं कर पाते। किसी भी भाषा में विदेशी (संस्कृत सहित) शब्दों को आत्मसात करने का एक सीधा-सा नियम है – यदि शब्द भाषा के स्वभाव के अनुरूप है तो वह

आत्मसात हो जाएगा, अन्यथा इसे संशोधित कर सम्मिलित किया जा सकता है, खासकर अगर भाषा में उसके समकक्ष कोई अवधारणा मौजूद न हो। संस्कृत, फारसी और अँग्रेज़ी के ऐसे अनेक शब्द हिन्दी में आत्मसात किए गए हैं। अगर किसी तत्सम शब्द का उपयोग करना ज़रूरी हो, तो उसे इटैलिक में लिखा जाना चाहिए जैसा कि अँग्रेज़ी में लैटिन शब्दों के साथ किया जाता है।[5]

अँग्रेज़ी का प्रभाव दूरगामी है और कुछ लोगों को डर है कि यह भारतीय साहित्य के लिए खतरे की घण्टी है। इनमें से कुछ डर अपनी जगह सही भी लगते हैं जिनके बारे में केवल समय ही बता सकता है। लेकिन इसमें कुछ ऐसा है जिसे लेकर हिन्दी के लेखक कुछ कर सकते हैं। एक रूसी भाषाविद् के अनुसार[6], "'शुद्धतावादी प्रवृत्ति' अँग्रेज़ी की प्रतिधारणा को प्रोत्साहित करती है।" सीधे शब्दों में कहें, तो शुद्धतावादी प्रवृत्ति हिन्दी को अँग्रेज़ी की तुलना में मुश्किल बनाती है।

टी. विजयेंद्र: मैसूर में जन्मे, इन्दौर में पले-बढ़े और 1966 में आई.आई.टी., खड़गपुर से बी.टेक. किया। कोलकाता के साहा इंस्टीट्यूट ऑफ न्यूक्लियर फिज़िक्स में एक साल काम करने के बाद, 70 के दशक के अन्तिम वर्षों के उहापोह भरे दौर से प्रभावित हुए। तब से, वे हमेशा किसी-न-किसी तरह से राजनीतिक-सामाजिक रूप में सक्रिय रहे हैं। वे 'पीक ऑयल' के क्षेत्र में सक्रिय हैं और पीक ऑयल इंडिया और इकोलॉजाइस के संस्थापक सदस्य हैं। वे अपना समय कभी पश्चिमी घाट की तलहटी में स्थित एक जैविक खेत पर, कभी पक्षियों को निहारते हुए, कभी कथा लेखन करते हुए, तो कभी हैदराबाद में रहकर बिताते हैं। उन्होंने संसाधनों की कमी को लेकर एक किताब, निबन्धों की तीन किताबें, दो कहानी संग्रह, एक उपन्यास और एक आत्मकथा लिखे हैं। **ईमेल:** t.vijayendra@gmail.com

अँग्रेज़ी से अनुवाद: अमेय कांत: इलेक्ट्रॉनिक्स इंजीनियरिंग में स्नातकोत्तर, अनुवाद में डिप्लोमा। लगभग दस वर्षों तक इंजीनियरिंग कॉलेजों में अध्यापन के बाद, पिछले कुछ वर्षों से फ्रीलांस अनुवाद कर रहे हैं। कविता संग्रह 'समुद्र से लौटेंगे रेत के घर' 2016 में अंतिका प्रकाशन से प्रकाशित। फोटोग्राफी और संगीत में रुचि।

यह लेख Countercurrents.org से साभार।

सन्दर्भ:

1. Bajpai, Kishoridas: Hindi Shabdanushasan, Varanasi v.s. 2013, Nagari Pracharini Sabha
2. T. Vijayendra: Dakhni: The language in which the Composite Culture of India was born, 2009, in 'The Losers Shall Inherit the World', 2009, Sangatya Sahitya Bhandar, Nakre, Karkala, Udupi
3. Talwar, Vir Bharat: Rassakashi, 2002, New Delhi, Saransh Prakashan Pvt. Ltd.
4. T. Vijayendra: Sanskrit and Indian Language Family, 2015, in 'Requiem for Our Times', Sangatya Sahitya Bhandar, Nakre, Karkala, Udupi
5. Dharamveer: Hindi Ki Atma, 1987, New Delhi, Samata Prakashan
6. Boris I Kluyev: India: National and Language Problem, Sterling Publications Pvt. Ltd. New Delhi

अब्बू खाँ की बकरी

ज़ाकिर हुसैन

हिमालय पहाड़ का नाम तो तुमने सुना ही होगा। इससे बड़ा पहाड़ दुनिया में कोई नहीं है। हज़ारों मील चला गया है, और ऊँचा इतना है कि अभी तक इसकी ऊँची चोटियों पर कभी-कभार कोई हिम्मत वाला आदमी ही पहुँच पाया है, वह भी जैसे बस ढैया छूने को। इस पहाड़ के अन्दर वादियों में बहुत-सी बस्तियाँ भी हैं। ऐसी ही एक बस्ती अल्मोड़ा भी है।

अल्मोड़ा में एक बड़े मियाँ रहते थे। उनका नाम था अब्बू खाँ। उन्हें बकरियाँ पालने का बहुत शौक था। अकेले आदमी थे। बस, एक-दो बकरियाँ रखते। दिन-भर उन्हें चराते फिरते। उनके अजीब-अजीब नाम रखते, किसी का 'कल्लो', किसी का 'मंगलिया', किसी का 'गूजरी', किसी का 'हुक्मा'। उनसे न जाने क्या-क्या बातें करते रहते और शाम के वक्त

बकरियों को लाकर घर में बाँध देते। अल्मोड़ा पहाड़ी जगह है, इसलिए अब्बू खाँ की बकरियाँ पहाड़ी नस्ल की होती थीं।

अब्बू खाँ गरीब थे, बड़े अभागे। उनकी सारी बकरियाँ कभी-न-कभी रस्सी तुड़ाकर रात को भाग जाती थीं। पहाड़ी बकरियाँ बँधे-बँधे घबरा जाती हैं। ये बकरियाँ भागकर पहाड़ में चली जाती थीं। वहाँ एक भेड़िया रहता था, वह उन्हें खा जाता था। मगर अजीब बात है, न अब्बू खाँ का प्यार, न शाम के दाने का लालच इन बकरियों को भागने से रोकता था, न भेड़िये का डर। बस, शायद यह बात हो कि पहाड़ी जानवरों के मिजाज़ में आज़ादी की बहुत मुहब्बत होती है। वह अपनी आज़ादी किन्हीं दामों में देने को राज़ी नहीं होते और मुसीबत और खतरों के बावजूद आज़ाद रहने को सुख और आराम की कैद से अच्छा जानते हैं।

जहाँ कोई बकरी भाग निकली, अब्बू खाँ बेचारे सर पकड़कर बैठ गए। उनकी समझ ही में न आता था कि हरी-हरी घास मैं इन्हें खिलाता हूँ, छिप-छिपाकर पड़ोसियों के धान के खेत में भी इन्हें छोड़ देता हूँ, शाम को दाना देता हूँ, मगर ये कम्बख्त नहीं ठहरतीं और पहाड़ में जाकर भेड़िये को अपना खून पिलाना पसन्द करती हैं।

जब अब्बू खाँ की बहुत-सी बकरियाँ यूँ भाग गईं तो बेचारे बहुत उदास हुए और कहने लगे, "अब कभी बकरी न पालूँगा। ज़िन्दगी के थोड़े दिन और हैं, बिन बकरियों के ही कट जाएँगे।" मगर अकेलापन बुरी चीज है। थोड़े दिन तो अब्बू खाँ बिन बकरियों के रहे। आखिर न रहा गया। एक दिन कहीं से एक बकरी मोल ले आए। यह बकरी अभी बच्चा ही थी, कोई साल-सवा साल की होगी। पहली बार ब्याई थी। अब्बू खाँ ने सोचा कि कम-उम्र की बकरी लूँगा तो शायद हिल जाए और इसे जब पहले ही से अच्छे-अच्छे चारे-दाने की आदत पड़ जाएगी तो फिर यह पहाड़ का रुख न करेगी।

यह बकरी थी बहुत खूबसूरत। रंग इसका बिलकुल सफेद था। बाल लम्बे-लम्बे थे। छोटे-छोटे काले-काले सींग ऐसे मालूम होते थे कि किसी ने आबनूस की काली लकड़ी में खूब मेहनत से तराशकर बनाए हों। लाल-लाल आँखें, तुम देखते तो कहते कि अरे यह बकरी तो हमने ले ली होती। यह बकरी देखने में ही अच्छी न थी, स्वभाव की भी बहुत अच्छी थी। प्यार से अब्बू खाँ का हाथ चाटती थी। दूध चाहे तो कोई बच्चा दुह ले। न लात मारती थी, न दूध के बरतन गिराती। अब्बू खाँ भी उस पर लट्टू हो गए थे। उसका नाम 'चाँदनी' रखा था और दिन-भर उससे बातें करते थे। कभी अपने चचा घसीटा खाँ का किस्सा उसे सुनाते थे, कभी अल्लाह बख्शे - मामा नत्थू खाँ का।

अब्बू खाँ ने यह सोचकर कि

बकरियाँ शायद मेरे घर के तंग आँगन में घबरा जाती हैं, अपनी इस बकरी चाँदनी के लिए नया इन्तज़ाम किया था। घर के बाहर उनका एक छोटा-सा खेत था। उसके चारों ओर उन्होंने न जाने कहाँ-कहाँ से काँटे जमा करके डाले थे कि कोई उसमें न आ सके। उसके बीच में चाँदनी को बाँधते थे और रस्सी खूब लम्बी रखी थी कि खूब इधर-उधर घूम सके। इस तरह चाँदनी को अब्बू खाँ के यहाँ काफी समय गुज़र गया और अब्बू खाँ को यकीन हो गया कि एक बकरी तो हिल गई। अब यह न भागेगी।

मगर अब्बू खाँ धोखे में थे। आज़ादी की इच्छा इतनी आसानी-से दिल से नहीं मिटती। पहाड़ और जंगल में रहनेवाले आज़ाद जानवरों का दम घर की चारदीवारी में घुटता है, तो काँटों से घिरे हुए खेत में भी उन्हें चैन नहीं मिलता। कैद-कैद सब एक-सी। थोड़े दिन के लिए चाहे ध्यान बँट जाए मगर फिर पहाड़ और जंगल याद आते हैं और कैदी अपनी रस्सी तुड़ाने की फिक्र करता है। अब्बू खाँ का खयाल ठीक न था कि 'चाँदनी' पहाड़ की हवा भूल गई।

***

एक दिन सुबह-सुबह जब सूरज अभी पहाड़ के पीछे ही था कि चाँदनी ने पहाड़ की तरफ नज़र की। मुँह जो जुगाली की वजह से चल रहा था, रुक गया और चाँदनी ने दिल में कहा, "वे पहाड़ की चोटियाँ कैसी सुन्दर हैं! वहाँ की और यहाँ की हवा का क्या मुकाबला! फिर वहाँ उछलना, कूदना, ठोकरें खाना और यहाँ हर वक्त बँधे रहना। गर्दन में आठ पहर यह कम्बख्त रस्सी। ऐसे घरों में गधे और खच्चर ही

भले चुग लें, हम बकरियों को तो ज़रा बड़ा मैदान चाहिए।"

इस खयाल का आना था और चाँदनी अब वह पहली चाँदनी ही न थी। न उसे हरी-हरी घास अच्छी लगती थी, न पानी मज़ा देता था, न अब्बू खाँ की लम्बी कहानियाँ उसे भाती थीं। दिन-पर-दिन दुबली होने लगी। दूध घटने लगा। हर वक्त मुँह पहाड़ की तरफ रहता और रस्सी को खींचती और अजीब दर्द-भरी आवाज़ से 'में-में' चिल्लाती।

अब्बू खाँ समझ गए कि हो-न-हो कोई बात ज़रूर है, लेकिन यह समझ में नहीं आता था कि क्या है। एक दिन सुबह अब्बू खाँ ने दूध दुह लिया तो चाँदनी ने उनकी तरफ मुँह फेरा और अपनी बकरियों वाली ज़बान में कहा, "अब्बू खाँ मियाँ, मैं अब तुम्हारे पास रहूँगी तो मुझे बड़ी बीमारी हो जाएगी। मुझे तो तुम पहाड़ ही पर चली जाने दो।" अब्बू खाँ बकरियों की बोली समझने लगे थे। चिल्लाकर बोले, "या अल्लाह, यह भी जाने को कहती है, यह भी।" और मारे दुख के मिट्टी की हँडिया, जिसमें दूध दुहा था, हाथ से गिरी और चूर-चूर हो गई।

अब्बू खाँ वहीं घास पर बकरी के पास बैठ गए और बहुत दुखी आवाज़ में पूछा, "क्यों बेटी चाँदनी, तू भी मुझे छोड़ना चाहती है?"

चाँदनी ने जवाब दिया, "हाँ अब्बू खाँ मियाँ, चाहती तो हूँ।"

"अरे तो क्या तुझे चारा नहीं मिलता? या दाना पसन्द नहीं? बनिए ने घुने दाने मिला दिए हैं क्या? मैं आज ही और दाना ले आऊँगा।"

"नहीं-नहीं, मियाँ, मुझे दाने की कोई तकलीफ नहीं।" चाँदनी ने जवाब दिया। "तो फिर क्या रस्सी छोटी है? मैं और लम्बी कर दूँगा।" चाँदनी ने कहा, "इससे क्या फायदा?"

"तो आखिर फिर क्या बात है? तू चाहती क्या है?"

चाँदनी बोली, "कुछ नहीं, बस मुझे तो पहाड़ में जाने दो।"

अब्बू खाँ ने कहा, "अरी अभागिन, तुझे यह भी खबर है कि वहाँ भेड़िया रहता है! वह जब आएगा तो क्या करेगी?"

चाँदनी ने जवाब दिया, "अल्लाह ने दो सींग दिए हैं। इनसे उसे मारूँगी।"

"हाँ-हाँ, ज़रूर।" अब्बू खाँ बोले, "भेड़िये पर तेरे सींगों ही का तो असर होगा। वह तो मेरी कई बकरियाँ हड़प कर चुका है। उनके सींग तो तुझसे बहुत बड़े थे। तू तो 'कल्लो' को जानती नहीं थी, वह यहाँ पिछले साल थी, बकरी काहे को थी, हिरन थी हिरन, काला हिरन! रात-भर सींगों से भेड़िये के साथ लड़ी। मगर फिर सुबह होते-होते उसने दबोच ही लिया और खा गया।"

चाँदनी ने कहा, "अरे-रे-रे, बेचारी कल्लो! मगर खैर, अब्बू खाँ मियाँ,

इससे क्या होता है! मुझे तो तुम पहाड़ में जाने ही दो।"

अब्बू खाँ कुछ झुँझलाए और बोले, "या अल्लाह, यह भी जाती है। मेरी एक चहेती बकरी और उस कम्बख्त भेड़िये के पेट में जाती है...मगर नहीं-नहीं, मैं इसे तो ज़रूर बचाऊँगा। कम्बख्त, एहसान-फरामोश, तेरी मर्ज़ी के खिलाफ तुझे बचाऊँगा। अब तो तेरा इरादा मालूम हो गया है। अच्छा बस, चल तुझे कोठरी में बाँधा करूँगा, नहीं तो मौका पाकर चल देगी।"

अब्बू खाँ ने आकर चाँदनी को एक कोने की कोठरी में बन्द कर दिया और ऊपर से ज़ंजीर चढ़ा दी। मगर गुस्से और झुँझलाहट में कोठरी की खिड़की बन्द करना भूल गए। इधर उन्होंने कुण्डी चढ़ाई, उधर चाँदनी उचककर खिड़की में से बाहर यह जा, वह जा।

***

चाँदनी पहाड़ पर पहुँची तो उसकी खुशी का क्या पूछना था। पहाड़ पर पेड़ उसने पहले भी देखे थे, लेकिन आज उनका और ही रंग था। उसे ऐसा मालूम होता था कि सब-के-सब खड़े हुए उसे बधाई दे रहे हैं कि फिर हममें आ मिली। इधर-उधर सेवन्ती के फूल मारे खुशी के खिल-खिलाकर हँस रहे थे। कहीं ऊँची-ऊँची घास उससे गले मिल रही थी। मालूम होता था कि सारा पहाड़ मारे खुशी के मुस्करा रहा है और अपनी बिछुड़ी हुई बच्ची के वापस आने पर फूला नहीं समाता। चाँदनी की खुशी का हाल कोई क्या बताए! न चारों तरफ काँटों की बाड़, न खूँटा, न रस्सी! और चारा! वह जड़ी-बूटियाँ कि अब्बू खाँ बेचारे बावजूद अपनी सारी मुहब्बत और प्यार के, न ला सकते।

चाँदनी कभी इधर उछलती, कभी उधर, यहाँ से कूदी, वहाँ फाँदी, कभी चट्टान पर है, कभी खड्ड में, इधर ज़रा फिसली, फिर सँभली। एक चाँदनी के आने से सारे पहाड़ में जान-सी आ गई थी। ऐसा लगता था जैसे अब्बू खाँ की दस-बारह बकरियाँ छूटकर यहाँ आ गई हों।

एक बार घास पर मुँह मारकर जो ज़रा सिर उठाया तो चाँदनी की नज़र अब्बू खाँ के मकान और उस काँटोंवाले घेर पर पड़ी। उन्हें देखकर चाँदनी खूब हँसी और दिल में कहने लगी, "या खुदा, कोई देखे तो! कितना छोटा-सा मकान है और कैसा छोटा-सा घेर! या अल्लाह, मैं इतने दिन इसमें कैसे रही? इसमें मैं आखिर समाई कैसे थी!" पहाड़ की चोटी पर से इस नन्ही-सी जान को सारी दुनिया हेच नज़र आती थी।

चाँदनी के लिए यह दिन भी अजीब दिन था। दोपहर तक इतनी उछली-कूदी कि शायद सारी उम्र में इतनी उछली-कूदी न होगी। दोपहर ढलते उसे पहाड़ी बकरियों का एक गल्ला दिखाई दिया। गल्ले की बकरियों ने उसे खुशी-खुशी अपने पास बुलाया और उससे हाल-चाल पूछा। गल्ले में कुछ जवान बकरे भी थे। उन्होंने भी चाँदनी की बड़ी आवभगत की। बल्कि उसमें एक बकरा था, ज़रा काले-काले रंग का, जिस पर कुछ सफेद ठप्पे थे, वह चाँदनी को भी अच्छा लगा और वे दोनों बहुत देर तक इधर-उधर फिरते रहे। उनमें न जाने क्या-क्या बातें हुईं, और कोई तो था नहीं, एक चश्मा पानी का बह रहा था, उसने सुनी होंगी। कभी कोई वहाँ जाए और उस चश्मे से पूछे तो शायद कुछ पता लगे। और फिर भी क्या खबर, यह चश्मा भी शायद न बताए। एक की बात दूसरे से कहना कुछ अच्छी बात नहीं।

खैर, बकरियों का गल्ला तो न जाने किधर चला गया। वह जवान बकरा भी इधर-उधर घूमकर अपने साथियों में जा मिला। चाँदनी को अभी आज़ादी की इतनी आरज़ू थी,

उसने गल्ले के साथ होकर अभी से अपने ऊपर बन्धन लगाना पसन्द न किया और एक तरफ को चल दी। शाम का वक्त, हवा – ठण्डी हवा चलने लगी। सारा पहाड़ लाल-सा हो गया और चाँदनी ने सोचा, ओहो, अभी से शाम! नीचे अब्बू खाँ का घर और वह काँटों वाला घेर, दोनों कुहरे में छिप गए थे। नीचे कोई चरवाहा अपनी बकरियों को बाड़े में बन्द करने के लिए जा रहा था। उनकी गरदन की घण्टियाँ बज रही थीं। चाँदनी इस आवाज़ को खूब पहचानती थी, इसे सुनकर उदास-सी हो गई। होते-होते अँधेरा होने लगा और पहाड़ में एक तरफ से आवाज़ आई, "खो, खो!"

यह आवाज़ सुनकर चाँदनी को भेड़िये का खयाल आया। दिन-भर एक दफा भी उसका ध्यान इधर नहीं गया था। पहाड़ के नीचे से एक सीटी और बिगुल की आवाज़ आई। यह

बेचारे अब्बू खाँ थे, जो आखिरी कोशिश कर रहे थे कि इसे सुनकर चाँदनी फिर लौट आए। उधर से वह कह रहे थे, "लौट आ, लौट आ!" और इधर से जान के दुश्मन भेड़िये की आवाज़ आ रही थी।

चाँदनी के जी में कुछ तो आया कि लौट चले। लेकिन उसे खूँटा याद आया, रस्सी याद आई और काँटों का घेर याद आया। और उसने सोचा कि उस ज़िन्दगी से तो यहाँ की मौत अच्छी। आखिर को सीटी और बिगुल की आवाज़ बन्द हो गई। पीछे से पत्तियों की खड़खड़ाहट सुनाई दी। चाँदनी ने मुड़कर देखा तो दो कान दिखाई दिए, सीधे खड़े हुए और दो आँखें, जो अँधेरे में चमक रही थीं। भेड़िया पहुँच गया था।

***

भेड़िया ज़मीन पर बैठा था। नज़र बेचारी बकरी पर जमी थी। उसे इत्मीनान था, जल्दी न थी। खूब जानता था कि अब कहाँ जाती है। बकरी ने जो उसकी तरफ मुँह किया तो वह मुस्कराया और बोला, "ओहो, अब्बू खाँ की बकरी है। खूब खिला-पिलाकर मोटा किया है।" यह कहकर उसने अपनी लाल-लाल ज़बान अपने नीले-नीले होंठों पर फेरी। चाँदनी को कल्लो का किस्सा याद आया, जो अब्बू खाँ ने बताया था, और उसने सोचा कि "मैं क्यों ख्वाह-मख्वाह रात-भर लड़कर सुबह जान दूँ। अभी क्यों न अपने को हवाले कर दूँ।" लेकिन फिर खयाल किया कि "नहीं।" अपना सर झुकाया, सींग आगे को किए और पैंतरा बदलकर भेड़िये के मुकाबले पर आई कि बहादुरों का यही चलन है। कोई यह न समझे कि चाँदनी अपनी बिसात न जानती थी और भेड़िये की ताकत का उसे अन्दाज़ा न था। वह खूब जानती थी कि बकरियाँ भेड़िये को नहीं मार सकतीं। वह तो सिर्फ यह चाहती थी कि अपनी बिसात-भर मुकाबला करे। जीत-हार पर अपना काबू नहीं, वह अल्लाह के हाथ है। मुकाबला ज़रूरी है। जी में यह सोचती थी कि "देखूँ, मैं कल्लो की तरह रात-भर मुकाबला कर सकती हूँ या नहीं।"

कुछ देर जब गुज़र गई तो भेड़िया बढ़ा। चाँदनी ने भी सींग सँभाले और वह-वह हमले किए कि भेड़िये का जी जानता होगा। दसियों बार उसने भेड़िये को पीछे रेल दिया। कभी-कभी चाँदनी ऊपर आसमान की तरफ देख लेती और सितारों से आँखों-आँखों में कह देती कि "ऐ काश, इसी तरह सुबह हो जाए।"

सितारे एक-एक करके गायब हो गए। चाँदनी ने आखिरी वक्त में अपना ज़ोर दुगना कर दिया। भेड़िया भी तंग आ गया था कि दूर से एक रोशनी-सी दिखाई दी। एक मुर्ग ने कहीं से बाँग दी। नीचे बस्ती में मस्जिद से अज़ान की आवाज़ आई। चाँदनी ने दिल में कहा, "अल्लाह, तेरा शुक्र है।" मैंने अपने बस-भर

मुकाबला किया, अब तेरी मर्ज़ी। अज़ान देनेवाला आखिरी दफा अल्लाहो-अकबर कह रहा था कि चाँदनी बेदम ज़मीन पर गिर पड़ी। उसकी सफेद बालों की पोशाक खून से बिलकुल लाल थी। भेड़िये ने उसे दबोच लिया और खा गया।

ऊपर पेड़ों पर चिड़ियाँ बैठी देख रही थीं। उनमें इस पर बहस हो रही है कि जीत किसकी हुई। सब कहती हैं कि भेड़िया जीता। एक बूढ़ी-सी चिड़िया है, उसकी ज़िद है कि चाँदनी जीती।

ज़ाकिर हुसैन (1897-1969): भारतीय अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ थे, जिन्होंने 13 मई, 1967 से 3 मई 1969 (अपनी मृत्यु तक) तक भारत के तीसरे राष्ट्रपति के रूप में कार्य किया। कुछ वर्ष जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली और अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ के कुलपति भी रहे। 1963 में *भारत रत्न* सम्मान से नवाज़ा गया।

सभी चित्र: तविशा सिंह: भोपाल निवासी तविशा हमेशा स्केचिंग या किताब पढ़ते हुए मिलती हैं। आप इलस्ट्रेटर-चित्रकार हैं। कहानियों के प्रति उनका बढ़ता लगाव, उन्हें चित्रों के साथ स्टोरी-टेलिंग करने की कला की ओर ले गया।

इस कहानी के चित्र कट-आउट शैली बनाए गए हैं।

यह कहानी राधाकृष्ण प्रकाशन द्वारा प्रकाशित ज़ाकिर हुसैन के कहानी संग्रह *अब्बू खाँ की बकरी* से साभार।

सवालीराम

सवाल: पृथ्वी का छोर कहाँ है?

- एक छात्र, होशंगाबाद, मध्य प्रदेश

जवाब: दूर क्षितिज की ओर देखते समय हमारी आँख जहाँ तक देख पाती है, हर तरफ धरती (या जलराशियाँ) ही दिखाई देती हैं। तो किसी के भी मन में यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि हमारी इस पृथ्वी का छोर कहाँ पर है। दूसरे शब्दों में क्या कहीं जाकर यह पृथ्वी समाप्त हो जाएगी – जैसे यदि हम किसी घर की छत पर चलते जाएँ तो एक समय बाद हम ऐसी जगह पहुँच जाते हैं जहाँ से एक कदम बढ़ाने पर भी हम गिर जाएँगे।

इस बात का सरल-सा जवाब यह है कि पृथ्वी का कोई छोर नहीं है, कोई अन्त नहीं है क्योंकि वह गेंद के समान गोल है। कोशिश करके देखिए कि क्या आप गेंद का कोई ओर-छोर ढूँढ़ पाते हैं। लेकिन समस्या यहीं पर शुरू होती है। गेंद को तो आप देख सकते हैं। वह इतनी छोटी होती है कि कोई दिक्कत नहीं होती। लेकिन पृथ्वी बहुत बड़ी है। तुलना के लिए देखिए कि फुटबॉल का व्यास करीब 20-22 से.मी. होता है जबकि पृथ्वी का व्यास लगभग साढ़े 12 हज़ार किलोमीटर है। से.मी. में बदलें तो आएगा 1,25,00,00,000 से.मी.। इसका परिणाम यह होता है कि पृथ्वी की वक्रता बहुत कम होती है। एक छोटे हिस्से में तो वह चपटी ही नज़र आती है। इसलिए इसे गोला मानना बहुत कठिन होता है।

दूसरी समस्या भी है। यदि आप एक बड़ा-सा गोला बना लें और उस पर चलने की कल्पना करें तो पाएँगे कि कुछ दूरी चलने के बाद आप उल्टे चलने लगेंगे और गिर जाएँगे।

लेकिन मनुष्यों ने काफी पहले ही समझ लिया था कि हम जिस पृथ्वी पर रहते हैं, वह गोलाकार है। इस बात का अन्दाज़ कैसे लगा और कैसे इस अन्दाज़े की पुष्टि हुई, उसमें अभी न जाएँ पर इतना कहना मुनासिब है कि यह निष्कर्ष मनुष्यों द्वारा किए गए अवलोकनों और ज़ोरदार तर्कशक्ति का परिणाम था। *चकमक* पत्रिका (मई 2019) में प्रकाशित एक लेख 'पृथ्वी गोल है या चपटी' में इस बारे में चर्चा की गई थी।[1]

लेकिन जैसा कि ऊपर कहा गया, हम जहाँ भी रहते हैं, उतने हिस्से को देखकर यह मानना मुश्किल होता है कि यह हिस्सा एक बड़े-से गोले की सतह का एक छोटा भाग है और गोले की विशालता के चलते सपाट/चपटा प्रतीत होता है। कई लोगों ने चपटेपन की अपनी धारणा को परखने के प्रयास किए हैं। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण व साहसिक प्रयास सोलहवीं सदी के पूर्वार्ध में स्पेन के फर्डिनांड मैजीलान और उनके साथी जुआन सेबेस्टियन एल्कानो ने किया था। इन नाविकों ने 1519 से 1522 के बीच अटलांटिक महासागर, प्रशान्त महासागर और हिन्द महासागर से होते हुए पूरी पृथ्वी का चक्कर लगाया था और जहाँ से शुरू किया था, वहीं वापिस पहुँच गए थे।

पृथ्वी को गोल न मानकर चपटी मानने की दुविधा काफी आम है। इसे लेकर एक आलेख 'गोल-मोल भूगोल, बच्चों से बातचीत'[2] *संदर्भ* में प्रकाशित हुआ था जिसमें बच्चों के साथ इस धारणा पर बातचीत के अनुभव साझा किए गए हैं।

इसके अलावा *संदर्भ* पत्रिका में आइज़ेक एसिमोव का एक लेख 'गलत, यानी कितना गलत?'[3] भी इस सन्दर्भ में पठनीय है जिसमें इस बात पर चर्चा की गई है कि पृथ्वी को

फर्डिनांड मैजीलान

जुआन सेबेस्टियन एल्कानो

चपटा मानने और गोलाकार मानने के बीच ज़्यादा फर्क नहीं है क्योंकि वक्रता इतनी कम है कि आम जीवन में अच्छे खासे बड़े भूभाग पर भी इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

वैसे एसिमोव का लेख ज़रूर पढ़ना चाहिए क्योंकि इसे पढ़कर समझ आता है कि हालाँकि सच्चाई को जानना महत्व रखता है, लेकिन यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि उस सच्चाई तक पहुँचने के रास्ते को भी समझें।

कोकिल चौधरी: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

सुशील जोशी: *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

सन्दर्भ (सरलता के लिए निम्न URL के QR कोड भी नीचे दिए गए हैं):

[1] *https://www.eklavya.in/magazine-activity/chakmak-magazine/197-chakmak-2009/185-chakmak-may-2009*

[2] *https://www.eklavya.in/magazine-activity/sandarbh-magazines/527-sandarbh-111-to-120/sandarbh-issue-116/2342-gool-mool-bhugol-baccho-se-baat-chit*

[3] *https://www.eklavya.in/magazine-activity/sandarbh-magazines/199-sandarbh-from-issue-81-to-85/sandarbh-issue-84/571-the-relativity-of-wrong-by-isaac-asimov*

सन्दर्भ-1 सन्दर्भ-2 सन्दर्भ-3

इस बार का सवाल

सवाल: फिल्म में ऐसा क्या होता है जो सब चलते-फिरते दिखते हैं?

- कक्षा 8, राधास्वामी हाई स्कूल, टिमरनी,

(होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम) होशंगाबाद, म.प्र.

इस सवाल के बारे में आप क्या सोचते हैं, आपका क्या अनुमान है, क्या होता होगा? इस सवाल को लेकर आप जो कुछ भी सोचते हैं, सही-गलत की परवाह किए बिना लिखकर हमें भेज दीजिए। सवाल का जवाब देने वाले पाठकों को *संदर्भ* **की तीन साल की सदस्यता उपहार स्वरूप दी जाएगी।**

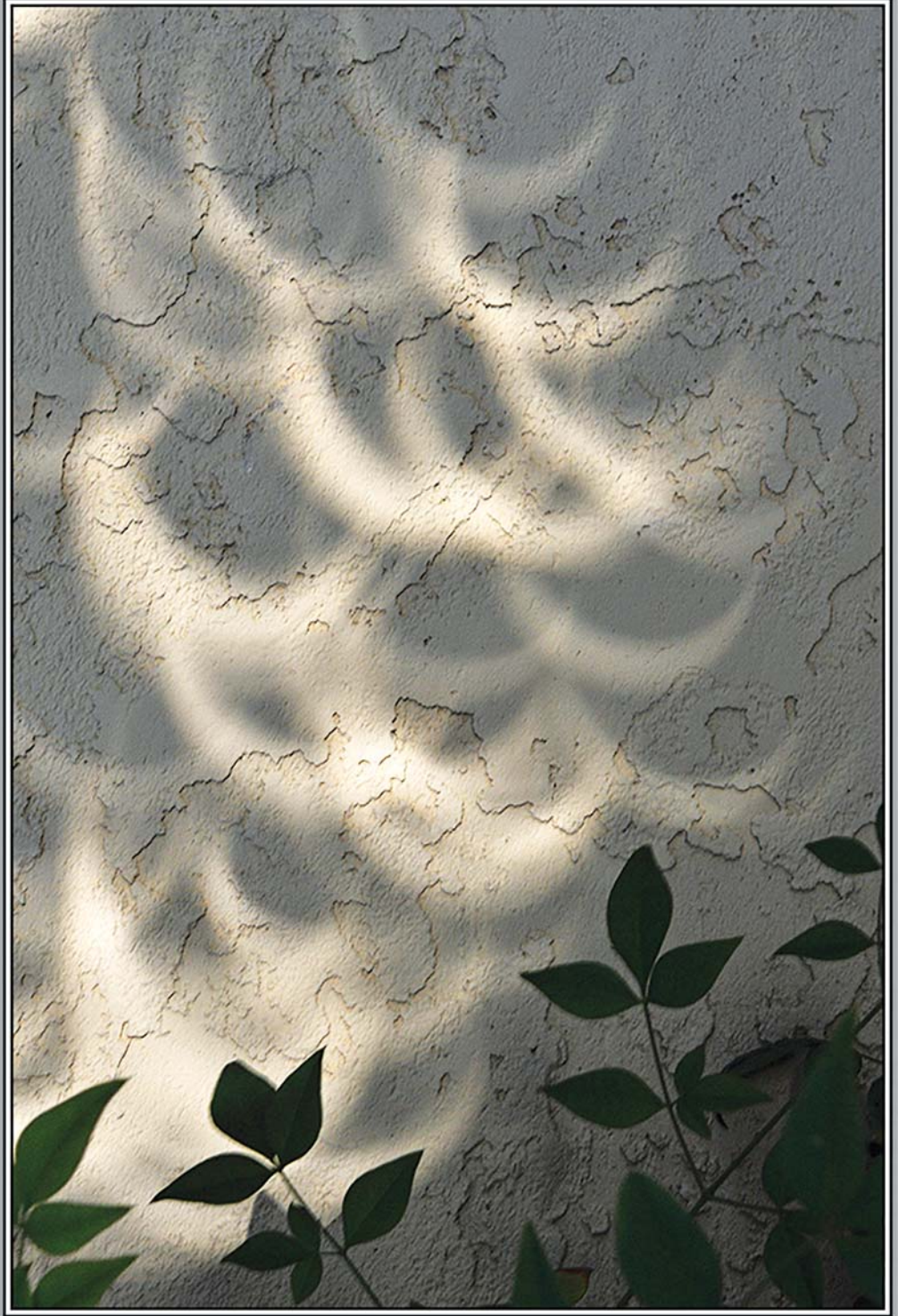

RNI No.: MPHIN/2007/20203

प्रकाशक, मुद्रक, राजेश खिंदरी की ओर से निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन, जमनालाल बजाज परिसर,
जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (म.प्र.) द्वारा एकलव्य से प्रकाशित तथा
भण्डारी प्रेस, ई-3/12, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462 016 (म.प्र.) से मुद्रित, सम्पादक: राजेश खिंदरी।